प्रकीर्णक-पुस्तकमाला नं० ४

भारत-रमणी।

सुप्रसिद्ध नाटककार स्वर्गीय द्विजेन्द्रलाल रायके
'बंग-नारी' नामक नाटकका
हिन्दी अनुवाद।

अनुवादकर्त्ता—
पं० रूपनारायण पाण्डेय।

प्रकाशक—
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय
हीराबाग, गिरगाँव—बम्बई।

फाल्गुन, १९८५ विक्रम।

मार्च, १९२९।

द्वितीयावृत्ति] [मूल्य चौदह आने।

प्रकाशक—
नाथूराम प्रेमी,
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई ।


मुद्रक—
विनायक बाळकृष्ण परांजपे,
नेटिव ओपिनियन प्रेस,
आंग्रेवाड़ी, गिरगांव—बम्बई

नाटकके पात्र ।

(पुरुष)

उपेन्द्र	वकील
देवेन्द्र	उपेन्द्रका भाई
सदानन्द	देवेन्द्रका बचपनका मित्र
केदार	देवेन्द्रका मित्र
यज्ञेश्वर	महाजन
महेन्द्र	देवेन्द्रका लड़का
विनयकुमार	सदानन्दका लड़का

भक्तगण, बालकगण, खरीददार लोग, जेलर, जमादार, लुटेरे, और पहरेवाले सिपाही ।

(स्त्री)

कामिनी	देवेन्द्रकी स्त्री
विनोदिनी	देवेन्द्रकी बड़ी लड़की
सुशीला	देवेन्द्रकी मँझली लड़की
कुमुदिनी	देवेन्द्रकी छोटी लड़की

वक्तव्य ।

स्वर्गीय कविवर द्विजेन्द्रलालरायने यह नाटक अपनी मृत्युके कोई दो तीन साल पहले लिखा था; परन्तु यह प्रकाशित हुआ है उनकी मृत्युके दो साल बाद। इसका मूल नाम ‘ बंग-नारी ’ है। हिन्दीभाषा-भाषी प्रान्तोंमें भी इसके विचारोंका प्रचार हो, इस कारण हम थोड़ेसे परिवर्तनके साथ इसके अनुवादको ‘ भारत-रमणी ’ नामसे प्रकाशित करते हैं। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि बंगालके समान भारतके अन्यान्य प्रान्तोंकी भी अनेक जातियोंमें न्यूनाधिक रूपसे वह ‘ पण-प्रथा ’ जारी है, जिसके सम्बन्धको लेकर यह नाटक रचा गया है।

इस पण-प्रथाका—जिसका कि दूसरा नाम ‘ वर-विक्रय ’ भी रक्खा जा सकता है—बंगालमें बहुत अधिक जोर है। जब तक हजार दो हजार रुपया दहेजमें देनेके लिए न हों, तब तक कोई पिता अपनी कन्याको सुयोग्य वरके हाथ नहीं सोंप सकता। इससे जिनके घर अधिक कन्यायें हो जाती हैं, उन निर्धनोंके कष्टोंका तो कोई पार ही नहीं रहता है। उन्हें अपना घर-द्वार बेचकर और कर्ज काढ़कर इस ‘ कन्यादाय ’ से मुक्त होना पड़ता है। इन्हीं दुःख-दुर्दशाओंको लक्ष्य करके द्विजेन्द्र बाबूने इस नाटकका लिखना आरंभ किया था। परन्तु लिखते लिखते यह इतना बढ़ गया और इसमें प्रसंगानुसार उपस्थित हुई एक गणिका (मुन्नी वेश्या) के चरित्रका इतना अच्छा विकाश हो उठा कि उसे उन्होंने एक स्वतन्त्र नाटकका रूप दे देना उचित समझा और तदनुसार वह संशोधित परिवर्धित होकर ‘ पर पारे ’ (हिन्दी—‘ उस पार ’) के नामसे जुदा प्रकाशित कर दिया गया। अब रह गया ‘ बंग-नारी ’ का मुख्य अंश, सो अवकाशाभावसे संशोधित न हो सकनेके कारण अप्रका-शित ही पड़ा रहा और इतनेमें ही ग्रन्थकर्ताका एकाएक स्वर्गवास हो गया। सो स्वर्गीय द्विजेन्द्र बाबू अपनी रचनाको सब प्रकारसे निर्दोष बनानेकी उसमें बहुत अधिक ध्यान रखते थे और इस कारण उनकी रचना बार

वार संशोधित और परिवर्धित होकर ही सर्वसाधारणके सामने उपस्थित होती थी। इससे कभी कभी तो उनकी रचनाका कोई कोई अंश सर्वथा नूतन आकार धारण कर लेता था। इस कामों वे अपने सहृदय और साहित्यसेवी मित्रोंसे बार बार परामर्श लेते थे। खेद है कि इस नाटकको संशोधन परिवर्तनादिका उक्त सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ है और यह उनके स्वर्गवासके कोई दो वर्ष बाद, जिस अवस्थामें मिला उसी अवस्थामें, प्रकाशित कर दिया गया है; फिर भी इसकी गणना बंगालके श्रेष्ठ सामाजिक नाटकोंमें है और सुना है कि कलकत्तेके मिनर्वा थियेटरमें यह 'उसपार' से भी अधिक सफलताके साथ खेला जाता है। यह कहनेकी अवश्यकता नहीं कि यदि इसका संशोधन भी द्विजेन्द्रबाबूके हाथसे हो गया होता, तो यह और भी अधिक चमक उठता और सामाजिक नाटकोंमें यह बेजोड़ नाटक कहलाता।

इस नाटकके सम्बन्धमें ग्रन्थकर्ताके परम श्रद्धाभाजन श्रीयुक्त प्रसाददास गोस्वामी महाशय मूलग्रन्थकी भूमिकामें लिखते हैं कि—

" वर्तमान समयके सबसे बढ़कर गुरुतर आन्दोलनके सम्बन्धमें विचार करना ही इस सामाजिक नाटकका उद्देश्य है। आजकल दहेजकी प्रथाको लेकर केवल बंगालमें ही नहीं, अन्य प्रान्तोंके हिन्दुओंमें भी घोर हलचल मची हुई है। इस प्रथाके विषयमें द्विजेन्द्रका जो अभिमत था उसका भी सारांश इस नाटकके पात्रोंके मुँहसे कहलाया गया है। सदानन्दकी बातोंका अधिक अंश स्वयं ग्रंथकारका ही अभिमत है। अपनी देवचरिता स्त्रीके वियोगके बाद द्विजेन्द्रलालने यह बात कई बार कही है कि 'मैं अब हँसीके गाने नही गाता—अच्छे नहीं लगते।' सदानन्दने भी एक जगह ये ही वाक्य कहे हैं। सदानन्द विलायत हो आनेवाला सरल, उदार, महत्, सच्चरित्र और पराये दुःखमें सहानुभूति दिखलानेवाला है—द्विजेन्द्र भी ठीक यही चीज थे। कविने सदानन्दके मुँहसे ही अपने विचार प्रकट किये हैं।

" पण-प्रथाके संबंधमें उनकी राय यह थी कि यह प्रथा जितनी बुरी या निन्दाके योग्य क्यों न हो, और इसे उखाड़ फें-

लिए कोई चाहे जितनी कोशिश क्यों न करे, पर यह नेस्त-नाबूद नहीं हो सकती। जहाँ कन्याका व्याह एक निर्दिष्ट अवस्थामें ही कर डालना जरूरी है, मगर पुत्रके व्याहके लिए वह नियम नहीं है; जहाँ उपयुक्त पात्र बहुत नहीं, लेकिन कन्याओंके बापोंमें खूब प्रतियोगिता चलती है; जहाँ धर्मका बंधन शिथिल हो गया है, समाज अभिभावकहीन बालककी तरह उच्छृंखल है, देशमें धनका अभाव है, मगर विलासकी बहिया बेढब तौरसे बढ़ रही है; जहाँ पहलेकी तरह अब जाति कुल-शील-गुण आदि बातोंपर लोगोंका अधिक लक्ष्य नहीं है, जहाँ लोगोंकी दृष्टि बारह आने धनके ऊपर और चार आने कन्याके रूपपर है—और सो भी इस लिए कि उस (कन्या) के कुरूपा कन्यायें उत्पन्न होंगी और तब उनका व्याह मुश्किलसे होगा—वहाँ, उस देशमें, पण-प्रथा जब प्रबल हो चुकी है तब उसे बिल्कुल उठा देना, बहुत ही कठिन काम है। देखा जाता है कि जो लोग दहेजकी चालकी निन्दा करते हैं, उन्हींमेंसे अनेक लोग पुत्रके व्याहके समय दूसरा रूप धारण कर लेते हैं। मुखसे तो कह देते हैं कि ' मैं कुछ नहीं माँगता, लेकिन अभी पुत्रके व्याह करनेका इरादा ही नहीं है ' और लड़कियोंके गरीब बापोंको टाल देते हैं, लेकिन उसके बाद ही देखा जाता है कि लड़कीके अमीर बापको पाते ही उनका मत एकदम बदल जाता है। कोई कोई तो समधीका घरबार बिकवाकर भी पुत्रके व्याहमें अतिशबाजी छुड़ाने, रंडी नचाने और बैंड बजवानेमें संकोच नहीं करते। लेकिन हाँ, ये काम अत्यन्त नरपिशाचोंके हाथसे ही होते हैं। मतलब यह कि पण-प्रथाका मिटना सहज नहीं देख पड़ता।

" तो फिर इस दरिद्र देशमें कर्तव्य क्या है? इस बारेमें ग्रन्थकारने स्थूल रूपसे एक उपायका आभास दिया है। वे कहते हैं, पहले तो बाल्यविवाहसे इस देशपर भयानक विपत्ति आई है। जिस देशमें [illegible]नका अभाव दिन दिन प्रबल रूपसे बढ़ रहा है, उस देशमें न [illegible] सकनेवाले और विद्यार्थी-जीवनवाले लोग व्याह करके गरीबोंकी [illegible] क्यों बढ़ाते हैं? कन्याको सयानी करके लिखना-पढ़ना सिखाकर

आवश्यक होनेसे कन्याओंका पालन कर संपूर्णरूपसे शिक्षा देकर, उसकी सम्मतिके अनुसार, अथवा उसकी योग्यताके अनुरूप किसी पात्रसे उसे ब्याह दें। न हो सके तो कन्या ब्रह्मचारिणी होकर रहे। जिस देशमें बाल-विधवाओंको आजन्म विधवा रहनेकी चाल है, उस देशमें असमर्थ पिताकी कुमारी कन्या क्यों न ब्रह्मचर्य रक्खेगी? धनी और समर्थ लोग अपनी कुमारी कन्याओंका ही क्यों, विधवा कन्याओंका भी विवाह करें तो कुछ हानि नहीं है; लेकिन असमर्थोंके लिए ब्याह करना अपरिहार्य नहीं है।

" समाज चाहे जितना उन्नत और संस्कृत क्यों न हो, यदि बीच बीचमें उसका संस्कार नहीं होता है, तो उसमें घासफूसका जम आना अवश्यंभावी परिणाम है। सब जगह संसारमें यही नियम लागू है। इस लिए सनातन प्रथाका, कमसे कम तुम जिसे सनातन प्रथा कहते हो उसका, कुछ कुछ परिवर्तन बहुत जरूरी है। इन सब मतोंको प्रकट करना ही इस नाटकका स्थूल उद्देश्य है।

" इसके बाद, कविकी चरित्रांकणकी सुप्रसिद्ध असीम शक्ति और प्रतिभाका परिचय नाटकमें सर्वत्र ही मिलता है। केदारका चरित्र एक अद्भुत नया चरित्र है। उपेन्द्र धर्मका ढोंग रचनेवाले बगलाभगतोंका चरम दृष्टान्त है। विनोदिनी और सुशीलामेंसे एक केवल संस्कृत और दूसरी अँगरेजी पढ़ी हुई स्त्री है। इन सबके बारेमें अधिक लिखनेका प्रयोजन नहीं है।"

आशा है कि बंगालके समान हमारे हिन्दीभाषाभाषी प्रान्तोंमें भी इस नाटकका आदर होगा और इसके अभिनयके द्वारा दहेजकी प्रथाके कष्टोंको लघु करनेका प्रयत्न किया जायगा।

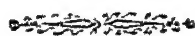
अन्तमें हम ग्रन्थकर्ताके सुयोग्य पुत्र श्रीयुत दिलीपकुमार राय महाशयके प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकाशित करते हैं, जिनकी उदार अनुमतिसे हम इन नाटक-रत्नोंसे अपनी मातृभाषाके भाण्डारको भरनेका सौभाग्य प्राप्त कर रहे हैं।

माघकृष्णा १०,
सं० १९७५ वि०।

विनीत—
नाथूराम प्रेमी

भारत-रमणी ।

पहला अंक ।



पहला दृश्य ।



स्थान—देवेन्द्रका बैठकखाना । **समय**—तीसरा पहर ।

[देवेन्द्र और सदानन्द ।]

देवेन्द्र—क्या करूँ भाई, बी० ए० की परीक्षा देनेके पहले ही लड़के-वाले पैदा हो जानेसे झंझटमें पड़ गया । लाचार लिखना-पढ़ना छोड़कर साधारण तनख्वाहपर नौकरी कर लेनी पड़ी ।

सदानन्द—तुम्हारे बापकी जायदादका बटवारा कैसे हुआ ?

देवेन्द्र—पिताजी लगभग सारी जायदाद वसीयतनामेमें दादाके नाम लिख गये हैं । मेरे हिस्सेमें पुरखोंके रहनेका घर और घरका सब सामान है । और, पिताजी ५०००) रु०का जो कर्ज कर गये हैं, उसमें आधा मुझे और आधा दादाको अदा करना पड़ेगा ।

सदा०—समाजको दोष क्यों देते हो देवेन्द्र, इसमें समाजका कोई अन्याय नहीं है।

देवे०—समाजका अन्याय नहीं है? कन्याका ब्याह करनेमें कितने ही बापोंका सर्वस्व लग गया—आबरू मिट गई!—अन्याय नहीं है?

सदा०—देवेन्द्र, तुमने इस संसारमें पुत्र-कन्याओंको पैदा किया है; इस लिए उनका भरण-पोषण करनेके लिए तुम बाध्य हो। तुम लड़केका भरण-पोषण तो पचीस वर्ष तक करोगे; लेकिन जब लड़कीकी बारी आवेगी तब दस बरस भी न बीतने दोगे कि उसके भरण-पोषणका भार वर-पक्षके सिर डाल दोगे, और शेष जीवनके भरण-पोषणके लिए वरपक्षको कुछ न दोगे? इसके सिवा पुत्रको तो तुम अपनी सारी सम्पत्तिका उत्तराधिकारी बना देते हो, फिर कन्या क्या कहींसे बहकर आई है? कन्याओंके पिता कन्याओंको एकदम सूखा टाल देना चाहते हैं। समाज वैसा नहीं करने देता—बस उसका यही अपराध है।

देवे०—मैं तो कन्याको यों ही नहीं टाल देना चाहता। वरका बाप दहेजका दावा क्यों करता है?

सदा०—नहीं तो रुपए किसे दोगे? हिन्दू-समाजके मतके अनुसार तुम्हारी लड़की उस वरके पिताके ही परिवारमें प्रवेश करेगी। वही उसे खिलावे-पिलावेगा और पहनावेगा। उसके हाथमें रुपए न दोगे तो किसे दोगे?

देवे०—वह अगर उन रुपयोंको बेकार खर्च कर दे, या उड़ा दे?

सदा०—सो तो कन्याका पिता भी उड़ा दे सकता है। उसका ससुर जब उसे खाने-पहननेको देनेकी ज़िम्मेदारी अपने ऊपर लेता है तब वह, जहाँ तक संभव है, प्रतिज्ञाबद्ध होता है। इसके सिवाय वह

और क्या कर सकता है? पीछे चाहे जो हो जाय—वह किसीके कुछ वशकी बात नहीं है।

देवे०—मैं तो अपनी हैसियतके माफ़िक लड़कीको दहेज देनेके लिए तैयार हूँ। लेकिन लड़केवाले तो डाँड़-मूसकर वसूल करते हैं—घर-द्वार विकवा लेना चाहते हैं।

सदा०—कभी नहीं। वे तुम्हारे पास डकैती करने नहीं आते। तुम खुद उनके पास रुपए देने जाते हो।

देवे०—क्या करें, कन्याके ऋणसे किसी तरह उऋण होना ही पड़ता है।

सदा०—कन्याका व्याह करना ही अगर अवश्य कर्तव्य है—उससे पिण्ड छुड़ाना ही अगर अभीष्ट है—तो फिर जहाँ सस्तेमें सौदा हो वहाँ क्यों नहीं जाते? तुम बी०ए० पास, एम०ए० पास, लड़का चाहते हो—अर्थात् वरकी आगेकी आमदनीपर ही तुम्हारा विशेष लक्ष्य है। फिर वरका बाप ही ५०००) या १००००) हाँकनेसे क्यों चूकेगा! एन्ट्रेन्स पास लड़का चाहो तो शायद १०००) रु० में ही मिल जायगा। तुम्हारी लड़की बहुत खूबसूरत हो तो और भी कममें काम हो जायगा।

देवे०—तो फिर व्याह ठहरा सौदा बेचना-खरीदना?

सदा०—बेचना-खरीदना शब्द सुननेमें खराब जरूर है, लेकिन संसारमें सब जगह वही देख पड़ता है। जो बाप लड़केके व्याहमें रुपए लेता है, वही लड़कीके व्याहमें रुपये देता है। कौड़ी-कौड़ी बदला चुक जाता है। यह बात ठीक है कि जिसके लड़कियोंकी संख्या अधिक है उसका नुकसान अधिक है, और जिसके लड़कोंकी संख्या अधिक है उसका लाभ अधिक है। लेकिन इस तरहकी विषमता तो पृथ्वीमें सभी जगह देखी जाती है। एक राजाका लड़का है,

बल्कि वे खुद (पुरुषजाति) दोषी हैं। देवेन्द्र, इस बाल्यविवाहकी प्रथाको पलट दो। इसीके साथ जो और सब प्रथायें बहुत जीर्ण हो गई हैं, उनकी भी मरम्मत करनी होगी। लेकिन पहले इसी प्रथाको सुधारो। इस बालविवाहने जातिको मज्जाके अभावसे दुर्बल, अन्नके अभावसे शीर्ण, रक्तके अभावसे डरपोक और उद्यमके अभावसे निकम्मा बना दिया है। समाजका इससे बढ़कर या इतना भी अपकार और किसी प्रथासे नहीं हुआ।

देवे०—यह क्या, तुम तो रोने लगे भाई!

सदा०—नहीं जी। अच्छा, अब मैं जाता हूँ।

(जल्दीसे प्रस्थान।)

देवे०—अभीतक वैसा ही स्वभाव है। सदानन्दसे आज कितने दिनोंके बाद भेंट हुई। दस वर्षके बाद मिले होंगे। लड़कपनके साथियों और सहपाठियोंको देखकर हृदयकी जलन कुछ कम हो जाती है और उसी बचपनकी याद आजाती है। वह बाल्यावस्था कैसी मधुर थी जब मैं इन्हीं सदानन्दके गलेमें हाथ डालकर निःसंकोच रास्तेमें चलता था, जी खोलकर बातें करता था। वह बाल्यावस्था कैसी मधुर थी जब शरदृतुका पूर्ण चन्द्रमा उदय होता था और मैं अवाक् होकर एकटक उसकी ओर ताका करता था। वर्षाकालमें मेघोंके गरजनेसे हृदय जैसे नाच उठता था। गर्मियोंकी रातोंमें आकाशमें नक्षत्र-पुंज निकल आते थे, जान पड़ता था, जैसे आकाशके रोमाञ्च हो रहा है। उधर देखते देखते आँखें चौंधा जाती थीं। वह बाल्यावस्था कैसी मधुर थी, जब यह चिन्ता नहीं करनी पड़ती थी कि "कल क्या खाना होगा; लड़केको पढ़ाना है, लड़कीका ब्याह करना है—कहाँसे खर्च आवे!"—आहा कैसा अच्छा समय था!—कौन?—केदार?

[केदारका प्रवेश ।]

केदार—नहीं छोड़ेगा ।

देवे०—क्या ?

केदार—यह जगह । असल तो लेगा ही, और सूद दरसूद वसूल करेगा । मैं वैरिस्टरके पास जाता हूँ । (जाना चाहता है ।)

देवे०—अरे कहाँ जाते हो ?

केदार—वैरिस्टरके बँगलेपर ।

देवे०—अरे जरा ठहर कर जाना ।

केदार—समय नहीं है ।

देवे०—कुछ जलपान कर लो ।

केदार—फुरसत नहीं है ।

देवे०—देर वहुत हो गई है—

केदार—वैरिस्टरसे मुलाकात करना है । कल आऊँगा । हाँ देखो–नहीं, पहले बैरिस्टरसे सलाह कर लूँ । मगर मेरा विश्वास है कि इसमें जरूर कुछ जाल है ।

देवे०—काहेमें ?

केदार—रहने दो, फिर कहूँगा । (प्रस्थान ।)

देवे०—अरे सुनो तो ।

केदार—(नेपथ्यमें) समय नहीं है ।

देवे०—(हँसता है ।)

[कामिनीका प्रवेश ।]

कामिनी—खानेको तैयार हो गया । चलकर नहाओ ।—क्यों, हँस क्यों रहे हो ?

देवे०—केदार आया था ।

केदार—पड़े रहिए।

विनोद—ऐसे त्यागी महापुरुष—

केदार—त्यागी? कभी किसीके ऊपर एक पैसा भी उन्होंने बाकी छोड़ा है?

विनोद—पैसा?—पैसा तुच्छ चीज़ है! वे अतिशय अमूल्य उपदेश मुफ्त बाँटते हैं—

केदार—मुफ्त?

विनोद—वे रुपये-पैसेको तृण सा तुच्छ समझते हैं। आप अगर एक दफा उनके मुखसे वैष्णवधर्मकी व्याख्या सुनें—

केदार—तो तर जाऊँ—क्यों न?

नवीन—यही तो त्याग है! वे मुफ्त ही मनके रोगकी दवा बाँटते हैं।

केदार—आराम न होनेसे मूल्य फेर देते हैं?

शंकर—फेर देना कैसा!—मूल्य लेते ही नहीं हैं।

केदार—बिलकुल?—जान पड़ता है, शायद रोगीकी सेवा भी मुफ्त करते हैं—क्यों?

विनोद—क्या कहा केदार बाबू?—रोगीकी सेवा करेंगे—प्रभू? वह देखिए—उनका फोटो टँगा है।—भला, यह सूरत रोगीकी सेवा करनेके योग्य है!

केदार—बापरे! बड़ा अपराध हुआ। लेकिन रोगी—अर्थात् रोगिणीकी सूरत अगर अच्छी हुई तो?

विनोद—आप कहते क्या है महाशय! हमारे प्रभुके बारेमें ठट्ठा!

केदार—हँसी-ठट्ठा करनेका मुझे अभ्यास नहीं है।—आजकल कलकत्तेमें घरघर ऐसे मुँहफोड़ अवतार दिखाई पड़ रहे हैं। और यह देश भी खूब है भैया, कि यहाँ इनके भक्त भी खासे जुट जाते हैं!

विनोद—वे प्रभु आ रहे हैं ।

शंकर और नवीन—प्रभु आ रहे हैं ! प्रभु आ रहे हैं !

केदार—आ रहे हैं क्यों—उदय हो रहे हैं । देखते नहीं हो, चारों ओर प्रकाश फैल रहा है !

विनोद—हाँ हाँ, उदय हो रहे हैं—उदय हो रहे हैं !

और दो भक्त—उदय हो रहे हैं ! उदय हो रहे हैं !

[आधी आँखें मूँदे माला जपते हुए उपेन्द्रका प्रवेश ।]

भक्तगण—सावधान,—सावधान,—(साष्टांग प्रणाम करते हैं ।)

उपेन्द्र—तुम्हारी जय हो ।

विनोद—प्रभु ! केदार बाबू—

उपेन्द्र—ओ ! केदार बाबू हैं ! (मुसकराकर) सौभाग्यकी बात है !—केदार बाबू, कैसे आना हुआ ?

केदार—प्रभो, आपके श्रीमुखसे वैष्णव धर्मके तत्त्वका उपदेश सुनने आया हूँ ।

उपेन्द्र—तत्त्वका उपदेश ?—तत्त्व मैं क्या जानूँ !—मैं मूर्ख उस महाधर्मका तत्त्व क्या जानूँ, जिसे महाप्रभु श्रीगौरांग—(प्रणाम करता है ।)

भक्तगण—आहा ! (महाप्रभुके लिए सब प्रणाम करते हैं ।)

उपेन्द्र—वृक्षसे फूल, फूलसे फल और फिर फलसे बीज पैदा होता है । बीज ही उत्पत्तिका कारण है ।

भक्तगण—कैसा गंभीर तत्त्व है ! बड़ा ही गंभीर विषय है !

उपेन्द्र—फूल यद्यपि देखनेमें सुन्दर है, तो भी—

भक्तगण—तो भी—

और नहीं या तो प्रभु तेरे प्रबल प्रेममें गल जावें।
वैर-विरोध-क्रोध-हिंसादिक दुर्भावोंको दल जावें॥
यह तो नूतन मधुर प्रणयका पुर है, इसमें भला कहो—
जगह हमारे लिए कहाँ है ? हम तो सब हैं मूढ़ अहो॥
वह कहता है—कौन कहाँ है गैर, सभी हैं निज भाई।
प्रेमदृष्टिसे सबको देखूँ, यही बात है मनभाई॥
केवल हँसता और सभीको जीसे करता प्यार रहूँ।
देश-देशमें घूमूँ ऐसे, इतना ही मैं सदा चहूँ॥
वह देखो, उस प्रभुके पीछे जाते हैं सब नरनारी।
और प्रतिध्वनि नील गगनमें व्याप्त हो रही है भारी॥
तुम सब आओ चलें, प्रेमसे कहो—कृष्ण गोविन्द हरे !
फटी पुरानी पोथी फेंको, आओ आओ चलो अरे॥

(एक नौकर जलपानका सामान लेकर आता है। उपेन्द्र भोजन करने बैठता है। भक्तगण कीर्तन करते हैं। कीर्तन समाप्त होने पर भी उपेन्द्र भोजन करता रहता है।)

उपेन्द्र—यह देखो भक्तगण, भगवानका कैसा विचित्र कौशल है ! घास मनुष्यके किसी काम न आती अगर पशु उसे न खाते। उसी घाससे गायके शरीरमें दूध पैदा होता है—और वह दूध कैसे सहजमें मनुष्यके शरीरको पुष्ट करता है ! कैसा आश्चर्य है !

भक्तगण—कैसा आश्चर्य है !

उपेन्द्र—गेहूँसे मैदा बनता है; मैदे और घीके मेलसे पूरी बनती है।—कैसा आश्चर्य है !

भक्तगण—कैसा आश्चर्य है !

उपेन्द्र—इस समय ये पूरियाँ रबड़ीके साथ पेटकी ओर चली जायँ ! (खाता है) हे हरि ! तुम्हीं सत्य हो !

भक्तगण—तुम्हीं सत्य हो ! (हरिके लिए प्रणाम करते हैं ।)

नवीन—प्रभू, तो फिर हम लोग घर जाकर हरिके नामकी सत्यताका अनुभव करें ?

उपेन्द्र—हाँ सो ठीक है । रात आगई है—

विनोद—प्रभू, अपने चरणोंमें रखिएगा !

उपेन्द्र—कुछ चिन्ता नहीं है वत्स !

शंकर—हम लोग पापी हैं ।

उपेन्द्र—हरिकी कृपा होनी चाहिए, फिर संसार-सागरमें कोई भय नहीं है !—हरिकीर्तन करते हुए अपने घर जाओ ।

(कीर्तन करते करते भक्तोंका प्रस्थान ।)

उपेन्द्र—जो भजे वही भक्त है; वह भजना चाहे धनके लिए हो, और चाहे भक्तिके लिए हो । मगर जान पड़ता है, इस केदारने मुझे पहचान लिया है । इससे भजाना होगा—इसे अपने दलमें मिलाना होगा । अस्तु, अब मुँह परसे नकली चेहरा हटाना चाहिए ।—लो, वह यज्ञेश्वर आ गये !

[यज्ञेश्वरका प्रवेश ।]

उपेन्द्र—आओ आओ । तुमसे कुछ कहना है ।

यज्ञे०—क्या ?

उपेन्द्र—यही कि पिताका सब कर्ज देवेन्द्रहीसे वसूल करो ।

यज्ञे०—वह कहाँसे देगा ?

उपेन्द्र—घर-द्वार बेच डाले—

यज्ञे०—वसूल करके दिला सको तो इसमें मुझे कुछ आपत्ति नहीं है; लेकिन मैं एक पैसा नहीं छोड़ूँगा—

उपेन्द्र—तुम्हारा पेट तो बहुत बड़ा देख पड़ता है ।

यज्ञे०—तुम्हारा ही पेट क्या कम है !—सारी जायदाद हड़प कर ली, फिर भी नहीं भरता !

उपेन्द्र—लेकिन तुम्हारे तो जोरू या बाल-बच्चे नहीं हैं।

यज्ञे०—होते कितनी देर लगती है ?

उपेन्द्र—इसके क्या माने ? और ब्याह करोगे क्या ?

यज्ञे०—लड़की खोज रहा हूँ।

उपेन्द्र—अच्छा !—मुझसे तो अबतक नहीं कहा।

यज्ञे०—आज वही कहने आया हूँ।

उपेन्द्र—मामला क्या है ?

यज्ञे०—तुम्हारे भाईके एक क्वाँरी लड़की है—

उपेन्द्र—हाँ है तो।—वह लो केदार बाबू फिर आ गये !—

[केदारका फिर प्रवेश।]

केदार—जरा देवर्षिसे मिलने आया हूँ।

यज्ञे०—देवर्षि कौन ?

केदार—स्वयं वक्ता महाशय। खूब जोड़ी मिली है—उपेन्द्र बाबू और यज्ञेश्वर बाबू—महर्षि और देवर्षि !

उपेन्द्र—देखिए केदार बाबू, आप बहुत अच्छे आदमी हैं। अगर आप—

केदार—अगर मैं महर्षिका शिष्य हो जाऊँ—क्यों न ? कहता तो हूँ महर्षिजी ! पर हम पाप-पुण्यके गढ़े हुए मर्त्यलोकके मनुष्य हैं। क्या हम स्वर्गकी इतनी अनावृत ज्योति सह लेंगे ?

उपेन्द्र—किन्तु—(थूक गिलता है) । मैं अभी आता हूँ केदार बाबू, कुछ खयाल न क़ीजिएगा। (प्रस्थान।)

केदार—तुम दोनों एक साथ बैठकर जरूर कोई बहुत बड़ी शैतानी सोच रहे हो । खैर सोचते रहो ।—सुनो । देखो यज्ञेश्वर बाबू, अगर तुम सूद न छोड़ दोगे तो हमने ठीक किया है कि न असल ही देंगे और न सूद ही देंगे । जाकर नालिश करो ।

यज्ञे०—यह क्या केदार बाबू ?

केदार—मैं कुछ सुनना नहीं चाहता । कुछ नहीं देंगे—बस, खतम हो गया ।

यज्ञे०—देवेन्द्र बाबूने अन्तको तुम्हारी सलाहसे यही ठीक किया दिखता है ?

केदार—नहीं देंगे, क्या करोगे ? मुकदमा चलाओ,—मैं वकीलकी सलाह ले चुका हूँ । दस्तावेज ठीक नहीं है—कर्ज साबित नहीं होगा । सूद छोड़ दो भैया, इसीमें अच्छाई है—नहीं तो जाकर नालिश करो ।

यज्ञे०—केदार बाबू नालिश करते करते मेरे बाल पक गये हैं । नालिश जरूर करूँगा ।

केदार—अब भी कहता हूँ, सूद छोड़ दो । आपसमें फैसला कर लो । नहीं तो असल भी न देंगे—सूद भी न देंगे ।

यज्ञे०—असल भी देना पड़ेगा, सूद भी देना पड़ेगा, और डिक्रीका खर्चा भी देना पड़ेगा ।

केदार—देखो यज्ञेश्वर बाबू, सूद छोड़ दो—चालाकी रहने दो ।

यज्ञे०—इसमें चालाकी क्या है ?

केदार—चालाकी नहीं तो क्या है ? असल भी नहीं छोड़ोगे—सूद भी नहीं छोड़ोगे—यह चालाकी नहीं तो और क्या है ?

यज्ञे०—यह काहेकी चालाकी है ? सूदके ही लिए तो रुपए उधार दिये थे—सूद नहीं छोड़ूँगा । इसमें चालाकी क्या है ?

केदार—[illegible] [illegible] हो जाता है—नहीं जाओगे ?

यज्ञे०—नहीं।

केदार—[illegible] जाओ। (प्रस्थान)

यज्ञे० —ओ [illegible] केदार ! ओ केदार ! सुनो सुनो।

[केदारका फिर आना।]

केदार—क्या खूब छोड़ दोगे ! आपसे पूछता हूँ, अब [illegible] नहीं सकता। [illegible], अब भी अगर सूद छोड़ दो, तो मैं इतना कर सकता हूँ कि [illegible] आपको अधिक [illegible] नहीं रहना पड़ेगा !

यज्ञे०—अजी, इसकी मुझे परवा नहीं। कुछ दिन और रह लूँगा। इसमें मेरी कुछ हानि नहीं। हाँ, अगर तुम एक काम कर सको तो मैं असल और सूद सब छोड़ दे सकता हूँ।

केदार—वह क्या काम है ? जरूर वह कोई असाध्य काम होगा।

यज्ञे०—असाध्य ऐसा कुछ नहीं है। उससे दोनोंका भला होगा।

केदार—हूँ ! बात तो खूब रंगीली छेड़ी है। (छड़ी रखकर) सुनूँ तो, मामला क्या है ?

यज्ञे०—सुना है, देवेन्द्र बाबूके एक व्याहके योग्य लड़की है। मेरी भी दूसरी स्त्री अभी हालमें मर गई है। वे अगर मेरे साथ अपनी लड़कीका व्याह कर दें—

केदार—तुम्हारे साथ ? यह तो बड़े मजेकी बात कही ! ! तुम्हारे साथ ! ! !

यज्ञे०—इसमें हानि क्या है ? उनकी लड़की भी तो सयानी हो गई है। इस समय अगर—

केदार—तुम्हारे साथ? यह तो बड़ी अच्छी दिल्लगी है! (हँसता है) यज्ञेश्वर, तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है—उसका इलाज करो।

यज्ञे०—तुम हँसते क्यों हो? अगर यह प्रस्ताव कर सको तो देवेन्द्र बाबूके दोनों काम बन जायँगे।

केदार—यज्ञेश्वर बाबू, मेरे अगर एक लड़की होती; और वह कानी अंधी, लँगड़ी कुबड़ी, होती—जितने दोष दुनियामें देख पड़ते हैं वे सब उसमें होते—और उसका ब्याह न होनेके कारण हिन्दूसमाज अगर मुझे सूलीपर चढ़ा दे सकता, तो भी मैं, लड़कीको उसके हाथ-पैर बाँध कर पानीमें भले ही फेंक देता और खुद हँसता हुआ सूलीपर भले ही चढ़ जाता, मगर तुम ऐसे पाजीके साथ उसका ब्याह नहीं करता। बिलकुल सच कह रहा हूँ। (प्रस्थान।)

यज्ञे०—हूँ! तुम्हारी इतनी मजाल? ठहरो—तुम्हें इसका मजा चिखाता हूँ।

[उपेन्द्रका फिर प्रवेश।]

उपेन्द्र—यज्ञेश्वर, तुम गंभीर भावसे यह प्रस्ताव करते हो? सचमुच तुम्हारा यही विचार है?

यज्ञे०—हाँ।

उपेन्द्र—लेकिन—यह तो विवाह नहीं है, यह व्यभिचार है।

यज्ञे०—उपेन्द्र, मेरे आगे ऋषि बननेकी क्या जरूरत है? हम दोनोंने क्या अबतक भी एक दूसरेको नहीं पहचाना? हमने क्या एक साथ—(इशारा करता है।)

उपेन्द्र—चुप।

देवे०—[illegible]

सदा०—[illegible] नहीं [illegible]।

देवे०—[illegible]?

सदा०—[illegible] नहीं [illegible]। [illegible] और [illegible] भी [illegible]। [illegible] अब [illegible] नहीं [illegible]। और [illegible] हूँ।

देवे०—[illegible] गाओ।

सदा०—अच्छा।

देवे०—(हँसकर) आज तुम्हारा गाना कोई नहीं सुनेगा।

सदा०—सुनना ही होगा। सुनते हो, मैं एक नाटकमण्डली खड़ी कर रहा हूँ।

देवे०—सच! स्वाँग कौन बनेगा?

सदा०—उसके लिए लोगोंकी कमी नहीं होगी।—देवेन्द्र, अब मैं जाता हूँ।

देवे०—क्यों?

सदा०—एक जरूरी काम है। इधरसे जा रहा था; सोचा, जरा तुमसे भी मिल लूँ। कल आऊँगा। (प्रस्थान।)

देवे०—सदानन्द मेरा सच्चा मित्र है। अगर सदानन्दके लड़केसे मै अपनी लड़कीका ब्याह कर सकता तो बड़ा अच्छा होता।—मगर नहीं, सदानन्द समाजके निकट अपराधी है। विलायत हो आया है! चोरी करो, वेश्या रक्खो, समाज सब सह लेगा। मगर विलायतयात्रा अक्षम्य अपराध है!—होगा। लड़कीके ब्याहकी चिन्ताके मारे मुझे कई दिनसे नींद नहीं आई! शरीर—

नेपथ्यमें—देवेन्द्र बाबू घरमें हैं ?

देवे०—हूँ, आइए ।

[हरि, नवीन, शंकर और विनोदका प्रवेश ।]

नवीन—अच्छा मकान है ।

शंकर—पुश्तैनी घर है, जमींदारी कायदेसे बना हुआ है ।

हरि—तनिक पुराना है ।

नवीन—इससे क्या होता है ? अच्छा मकान है ।

हरि—जरा छोटा है ।

नवीन—लेकिन कैसी हवा आती है—कंपनी बागका आनन्द आता है । चन्द्रकान्त बाबू जो कुछ करते थे सब अव्वल नंबरका !

विनोद—पाँच हजार रुपयोंका कर्ज करके तीन गाँव खरीद डाले । उनमें उद्योग-धंधेकी बुद्धि खूब थी । बड़े ही चतुर थे ।

हरि—लेकिन यह तो कहना ही पड़ेगा कि उन्होंने जायदादका बँटवारा ठीक नहीं किया ।

देवे०—वह जो कुछ कर गये हैं सो खूब सोच-समझकर ही कर गये हैं । उसके लिए मुझे कुछ भी दुःख नहीं है ।

हरि—सो ठीक है । लेकिन हाँ, अगर यह कर्ज न छोड़ जाते तो बहुत अच्छा होता ।

नवीन—हाँ देवेन्द्र बाबू, उस कर्जका क्या उपाय किया है ? यज्ञेश्वर बाबू तो अब और देर तक रुक नहीं सकते ।

देवे०—अभी तक तो कुछ उपाय नहीं कर सका हूँ ।

शंकर०—यज्ञेश्वर बाबू नालिश करना नहीं चाहते । मगर क्या करें, तीन बरस हो गये और सूद भी बढ़ता जा रहा है । फिर पाँच हजार रुपए छोड़ भी कैसे दें !

देवे०—क्या प्रस्ताव ?

हरि—वही जो केदार बाबूने कहा। देखिए, एक पंथ दो काम हो जायँगे। इधर कर्जसे पीछा छूटेगा, उधर लड़कीके व्याहका खर्च भी बच जायगा।

देवे०—अच्छा, सोचकर देखूँगा।

शंकर—हाँ देखिएगा। ऐसा सुयोग जीवनभरमें एक ही दो बार हाथ आता है।

हरि—अच्छा तो अब हम लोग जाते हैं। कब जवाब दीजिएगा ?

देवे०—कल।

हरि—अच्छी बात है। (साथियोंसे) तो चलो।

नवीन—चलो।

(सबका प्रस्थान।)

देवे०—बड़ी विषम समस्यामें—बड़ी भारी उलझनमें डाल दिया। व्याह ?—वह तो बहुत ही बूढ़ा है।—मगर क्या करूँ ? इसके सिवा उपाय क्या है ?—नहीं, बहुत ही बूढ़ा है, और उस पर भी बड़ा ही पापी है। लड़कीको मैं एकदम पानीमें नहीं बहा दे सकूँगा।—लो वे दादा आ रहे हैं।

[उपेन्द्रका प्रवेश।]

उपे०—देवेन्द्र, तुम्हारी खैर-खबर लेने आया हूँ। सब कुशल तो है?

देवे०—हाँ दादा, शरीरसे तो एक तरह अच्छा ही हूँ, लेकिन मानसिक कष्ट बड़ा विकट है। संसारकी अनेक झंझटोंमें—

उपे०—सो तो है ही। संसारमें केवल दुःख है। सुखका कहीं नाम नहीं। शास्त्रकारोंने कहा है कि यह संसार माया है। लेकिन यह मायाका बन्धन काटकर निकल जाना भी कठिन है। बुद्धदेवने संन्यास

ले लिया था । उनके मनमें असीम बल था । लेकिन हम पापी जीव हैं; वैसा नहीं कर सकते । जितना हो सके, अपनेको संसारके बन्धनसे अलग रक्खो । तुम मेरे छोटे भाई हो, इसीसे तुम्हें उपदेश देता हूँ । चिन्ता मत करो ।

देवे०—लेकिन चिन्ता किये बिना भी तो नहीं रहा जाता । लड़की-लड़कोंको तो गला घोटकर मार डाल नहीं सकता । उसके ऊपर और—

उपे०—वही तो देवेन्द्र भैया, मैं कहता हूँ । श्रीकृष्णचन्द्रकी करुणाके बिना जीवकी गति नहीं है । राधेकृष्ण—राधेकृष्ण !

देवे०—बड़ा लड़का बिगड़ कर संन्यासी हो गया । छोटा लड़का भी खराब-खस्ता हो रहा है । एक लड़कीका ब्याह किया । वह विधवा हो गई । दूसरी लड़की है, सो उसके ब्याहका कोई उपाय नहीं कर पाता ।

उपे०—संसारका यही नियम है । तुम्ही बताओ भाई, क्या किया जाय ?

देवे०—इधर गिरिस्तीका नित्यका खर्च मारे डालता है ।

उपे०—वह भी जरूरी है । गिरिस्तीका खर्च किये बिना भी नहीं बनता । दाम दिये बिना कोई कुछ देना नहीं चाहता । बहुत ही जरूरी चीज आटा—दाल—चावल भी खरीदने जाओ तो दाम माँगे जाते हैं ! बताओ, आदमी क्या करे ? खर्च—नित्य खर्च चाहिए । नारायण ! गोविन्द !

देवे०—दादा, पिताका सब कर्ज तुम चुका दो । मैं अपने हिस्सेकी रकम धीरे धीरे अदा कर दूँगा । पहले इधर लड़कीके ब्याह वगैरहका खर्च निपटा लूँ; फिर तुमको दूँगा । तुम अगर मेरे हिस्सेके पाँच हजार रुपए महाजनको दे दो, तो मेरी जान बच जाय ।

उपे०—पाँच हजार रुपए ? देवेन्द्र भैया, पाँच हजार रुपए नीचेकी ओर देखते हुए एक चुटकी बजाते ही नहीं आ जाते।

देवे०—इसीसे तो मैं तुमसे यह याचना कर रहा हूँ। पहले मैं इस कन्यादायसे उद्धार हो लूँ, उसके बाद—

उपे०—देखो देवेन्द्र, तुमको मैं एक सहज उपाय बताता हूँ। यज्ञेश्वरके साथ सुशीलाका ब्याह कर दो। वह शायद सूद और असल सब छोड़ देनेको राजी हो जायगा। मैं तुम्हारी ओरसे अनुरोध करूँगा। तुम मेरे छोटे भाई हो, नहीं तो—हरे मुरारे!

देवे०—दादा, तुम यह क्या कह रहे हो ?

उपे०—नहीं तो तुम्हीं बताओ, और उपाय क्या है ? उसके पास बेशुमार दौलत है।

देवे०—लेकिन वह अब और कितने दिन जिएगा ?

उपे०—उसके बाद सब दौलत तुम्हारी लड़कीहीकी हो जायगी। फिर तुम्हें कोई चिन्ता नहीं रहेगी। देवेन्द्र, समझ जाओ। भैया, तुम मेरे छोटे भाई हो। मैं तुम्हारा शुभचिन्तक हूँ; इसीसे कहता हूँ।—गोपाल! गोविन्द!—भैया, सोचकर देख लो, ऐसा सुभीता हमेशा नसीब नहीं होता। उसके पास बेशुमार दौलत है—वह सब तुम्हारी ही है!—केशव! मधुसूदन!

देवे०—(चिन्तितभावसे) हूँ।

उपे०—सोचकर देखो। अब मैं जाता हूँ। देखो देवेन्द्र, तुम्हारे घरके आसपास घासका जंगल हो गया है।—इसे साफ करवा डालो; नहीं तो बीमारी फैलनेका खटका है। तुम मेरे सगे भाई हो, इसीसे तुमको समझाता हूँ। (घूमकर) देखो, तुमको जब जो जरू-

रत हो, मुझे जताना । भैया, देखो, मैं प्रायः ही तुम्हारी खबर ले जाता हूँ ।—जय राधेकृष्ण ! (प्रस्थान ।)

देवे०—मुझपर तुम्हारी असीम कृपा है दादा! मुँहकी हँसी खर्च करनेमें कभी तुम्हें कृपण नहीं देखा । (लंबी साँस लेकर) पर ऐसी कोरी जबानी सहानुभूति भी दिखानेवाले कितने लोग हैं?

[विनयकुमारका प्रवेश ।]

विनय०—बाबू, अम्मा पुकार रही हैं ।

देवे०—चल, मैं आता हूँ ।

(विनयकुमारका प्रस्थान ।)

देवे०—लड़कीकी हत्या करूँगा । दुर्गाका नाम लेकर बलिदान कर डालूँ, उसके बाद लड़कीके नसीबमें जो है, वह होगा ।

[सुशीलाका प्रवेश ।]

सुशीला—बाबूजी, अम्मा आपको भीतर बुला रही हैं ।

देवे०—उन्हें यहीं भेज दो ।

(सुशीलाका प्रस्थान ।)

देवे०—समाज, तूने ऐसा नियम बना रक्खा है कि कन्या घरवालोंको अभिशापके समान जान पड़ती है । किसी तरह उसे घरसे विदा कर पाया कि प्राण बच गये । इसीसे लड़की पैदा होनेपर मा लज्जित होती है, पिताका मुँह उतर जाता है, कोई खुशी नहीं मनाई जाती । जाने दो । अब नहीं सोचूँगा । हाय, यह राह राह फिरनेवाला कुत्ता ही अगर मैं होता! लड़कीके ब्याहकी चिन्तामें तो न घुलना पड़ता ।—आँखोंमें आँसू आ रहे हैं ।

[कामिनीका प्रवेश ।]

देवे०—(गंभीर स्वरमें) सुना, मैंने ठीक कर लिया ।

कामिनी—क्या?

देवे०—कतल करूँगा।

कामि०—किसे ?

देवे०—सुशीलाको !

कामि०—यह क्या कहते हो ?

देवे०—यज्ञेश्वर बाबूके साथ सुशीलाका ब्याह करूँगा।

कामि०—ऐं ! यह क्या ! वह तो बूढ़ा—एकदम बूढ़ा है। तीन पन बीत गये, एक पन बाकी है।

देवे०—एक पन तो है ! उसी एक पनके साथ ब्याह करूँगा।

कामि०—क्यों,—चन्द्र बाबूके लड़केके साथ जो बातचीत थी।

देवे०—वे पाँच हजार रुपए माँगते हैं।

कामिनी—रुपयोंकी तदबीर करो।

देवे०—तुम्हीं बताओ, कहाँसे करूँ ?

कामिनी—कर्ज ले लो।

देवे०—बस। तुमने बिल्कुल सहज राह बता दी। कर्ज लूँ ? जान पड़ता है, वह कर्ज चुका दोगी तुम—क्यों ?

कामिनी—कर्ज किसी न किसी तरह अदा हो ही जायगा।

देवे०—वह 'तरह' क्या है, वही अगर अनुग्रह करके बता दो, तो मेरा बड़ा उपकार हो। अच्छा, पहले यही बताओ, कर्ज कौन देगा ? किससे माँगूँ ?

कामिनी—क्यों जेठजीसे माँगो।

देवे०—दादासे ? दादा कर्ज देंगे ! (सूखी हँसी हँसता है।)

कामिनी—क्यों भाईको विपत्तिमें पड़े देखकर उन्हें दया नहीं आवेगी ? वे भाईकी रक्षा नहीं करेंगे ?

देवे०—तुमको याद है कि यह कौन युग है ?

कामिनी—अच्छा एक दफा माँगकर देखो न ।

देवे०—माँगकर देख चुका हूँ । वह अपमान भी हो गया है ।

कामिनी—फिर ?

देवे०—फिर ! सामने देखो, आसपास देखो, पीछे देखो, इस 'फिर' का उत्तर नहीं पाओगी । ऊपरकी ओर ताक कर एक बार पुकार कर देखो—'भगवान् फिर ?' कुछ उत्तर नहीं पाओगी । सूनसान मैदान है—सब जगह सन्नाटा है ।

कामिनी—तो फिर क्या यही निश्चय रहा ?

देवे०—(रोनेके ऐसे स्वरमें) हम दोनोंने सुशीलाको पैदा किया है, गोदमें रखकर पाला-पोसा है, उस सोनेकी पुतलीको इतना बड़ा किया है । जानती हो काहेके लिए ? समाजके चरणोंमें बलिदान करनेके लिए ही न ? अब आओ, तुम उसके पैर पकड़ो, मैं उसका सिर पकड़ूँ । कसकर पकड़ो । और यज्ञेश्वर उसकी गर्दनपर एक खाँड़ा मारे । उसके बाद ? उसके बाद वह खून समाज-राक्षसके मुखपर छिड़क दो ।

चौथा दृश्य ।

स्थान—देवेन्द्रका अन्तःपुर । समय—प्रातःकाल ।

[विनयकुमार और सुशीला ।]

विनय—सुशीला, तुम्हारे ब्याहकी बातचीत हो रही है ?

(सुशीला सिर झुकाये पैरके अँगूठेसे जमीन खोदने लगती है ।)

विनय—तुमको वे लोग देख गये ?

सुशीला—(सिर झुकाये) हाँ ।

विनय—तो फिर मन ठीक हो गया ?

सुशीला—हाँ, कुछ नहीं !

विनय—तुम ब्याह करोगी ?

सुशीला—मैं नहीं जानती।

विनय—तुम्हारा ब्याह है, और तुम नहीं जानती ?

(सुशीला मुँह ढकती है। उसकी दोनों आँखोंसे आँसू टपक आये हैं।)

सुशीला—(सहसा) विनय !

विनय—क्या सुशीला !

सुशीला—विनय !

विनय—क्या है सुशीला ? बोलो—चुप क्यों हो गईं !

सुशीला—विनय, तुम मुझे अब भी प्यार करते हो ?

विनय—प्यार करता हूँ !—यह बात तुम पूछ रही हो सुशीला ? —हाँ तो पूछ सकती हो। मैंने कभी अपने मुँहसे यह बात तुम्हारे आगे नहीं कही। परन्तु यह बात कहनेके लिए मेरे सिरसे पैर तक गर्म खूनने लहरें मारी हैं; उन्मत्त कैदीकी तरह वाणीने बंधन तोड़कर बाहर निकलना चाहा है; तो भी नहीं कही।

सुशीला—तो तुम मुझे प्यार करते हो ?

विनय—क्या तुम नहीं जानतीं ? समझ नहीं सकीं ! सच है कि मैंने अपनी जबानसे यह बात नहीं कही, तो भी मेरी नजरसे, मेरी आवाजसे, मेरी हरकतोंसे तुम नहीं समझ सकीं ?

सुशीला—अपनी जबानसे क्यों नहीं कहा ?

विनय—तुम्हारे ही भलेके लिए। क्योंकि मेरे साथ तुम्हारा ब्याह हो नहीं सकता।

सुशीला—क्यों नहीं हो सकता ?

विनय——तुम्हारे पिता ऐसा नहीं करेंगे। क़ारण जानती हो? क़ारण यही है कि मैं विलायत-यात्रा करनेवालेका लड़का हूँ।

सुशीला——और अगर पिताकी मर्जी न होनेपर भी मैं तुम्हारे साथ व्याह करूँ?

विनय——यह तुम क्या कह रही हो? मेरे लिए तुम अपने कर्त्तव्यकी राह छोड़ दोगी? ना सुशीला, यह नहीं हो सकता।

सुशीला——अपने कामकी जिम्मेदारी मेरे ऊपर है। तुम उसके जिम्मेदार नहीं हो। मैं अब दूध-पीती बच्ची नहीं हूँ। मेरा निजका भी कुछ अधिकार है। अगर पिताकी इच्छा थी कि मुझे किसी ऐरे-गैरे बूढ़ेके गले मढ़ दें, तो उसका एक समय था। वह समय निकल गया। अब मैं अपने बारेमें खुद सोच-समझ सकती हूँ। इस समय वे जो चाहें सो नहीं कर सकते।

विनय——अपने पिताके प्रति क्या तुम्हारा कुछ कर्तव्य नहीं है?

सुशीला——पिताका भी सन्तानके प्रति क्या कुछ कर्त्तव्य नहीं है?

विनय——तुम्हारे पिता जो करते हैं, सो तुम्हारे ही भलेके लिए करते हैं।

सुशीला——विनय, तुम खूब धीर, शान्त, स्थिर भावसे यह बात कह सकते हो? वे एक साठ बरसके बूढ़ेके साथ मेरा व्याह करना चाहते हैं। मुझे उस लंपटके हाथमें क्यों सौंपे दे रहे हैं? समाजके लिए, धनके लिए; मेरे सुखके लिए नहीं।

विनय——अगर यही बात हो, तो क्या तुम पिताकी इच्छाके चरणोंमें अपनी बलि नहीं दे सकतीं?

सुशीला——क्यों ऐसा करूँ?

विनय——इसे आत्मत्याग कहते हैं।

सुशीला—मैं इस तरह अन्याय रूपसे आत्मोत्सर्ग करना नहीं चाहती;—यह मुझसे नहीं हो सकेगा। मैं पिताको, समाजको, ईश्वरको सन्तुष्ट करनेके लिए अपने साथ इतना अविचार नहीं कर सकती। आत्मत्याग कहते हो विनय! इसे आत्मत्याग कहते हैं? किसी हितके कामके लिए अपनी बलि देनेका नाम आत्मत्याग है। किन्तु एक खूनी जानवरके—इस समाजके—पेटको भरनेके लिए अपने गलेमें फाँसी लगाना स्वार्थ-त्याग नहीं है। यह आत्म-हत्या है। मैं इसके लिए राजी नहीं हूँ। विनय, बोलो, मैं अगर पिताकी इच्छाके विरुद्ध तुमसे ब्याह करूँ?

विनय—नहीं सुशीला, तुम्हारे पिताकी इच्छाके विरुद्ध हमारा ब्याह नहीं हो सकता। यह नहीं हो सकता कि मेरी प्रवृत्ति कर्तव्यको दबा ले।

सुशीला—तो फिर यह कहो कि तुम मुझे प्यार नहीं करते!

विनय—तुम्हें प्यार करता हूँ, इसीसे तो यह कह रहा हूँ। तुम्हें इतना प्यार करता हूँ कि तुम्हें छूनेमें भी डर लगता है—कहीं तुम मेरे हाथके स्पर्शसे मलिन न हो जाओ। तुम्हारे मुँहकी ओर ताक कर एक पैर आगे बढ़ानेमें भी मुझे यह डर लगता है कि कहीं इस रूपके पवित्र मन्दिरको कलुषित न कर डालूँ। सुनसान रातमें आकाशकी ओर ताकता हुआ तुम्हारा ध्यान करता हूँ और स्वर्गका सपना देखता हूँ। किन्तु हमारा विवाह असंभव है।

सुशीला—तो फिर हमारी यह आखरी भेंट है।

विनय—(सोचकर) वही सही।—यह दंड—बड़ा कठोर दण्ड है। तुमको न देखनेसे मुझे पृथ्वीभर सूनी जान पड़ेगी, मेरा कलेजा फट जायगा। लेकिन हम दोनोंकी भलाईके लिए—हम दोनोंका अब

न मिलना ही अच्छा है । तुम पिताके प्रति अपने कर्तव्यका पालन करो । मैं उसमें विघ्न बनकर तुम्हारे सामने नहीं आऊँगा । मैं तुम्हारे कर्तव्य-पालनकी राह साफ किये देता हूँ । अच्छा सुशीला, जाता हूँ ।

(प्रस्थान ।)

सुशीला—(दमभर ठगीसी खड़ी रहकर) तुम भी इस कुचक्रमें मिले हुए हो । अच्छी बात है; मैं व्याह ही नहीं करूँगी । व्याह—इन ममताहीन हृदयहीन पुरुषोंके संसर्गमें आना ही अन्याय है । इन्हें प्यार करना होगा ! इनकी दासी बनकर रहना होगा !—विनय, तुमने मुझे बचा लिया, सचमुच तुमने सब झंझट साफ कर दिया । मैं व्याह ही नहीं करूँगी ।

[विनोदिनीका प्रवेश ।]

विनो०—सुशीला ?

सुशी०—कौन—दीदी ?

विनो०—तुम कुछ नहीं समझ सकीं ।

सुशी०—क्या नहीं समझ सकी ?

विनो०—उनके उच्च हृदय और महत् विचारोंको ?

सुशी०—किसके ?

विनो०—विनयकुमारके ।

सुशी०—उच्च हृदय और महत् विचार !

विनो०—कैसा विनय है ! कैसा आत्मत्याग है !—कैसी दृढ़ता है ! कुछ नहीं समझ सकीं !—इतनी नन्हीं तो अब तुम नहीं हो । भगवान् ! पुरुषका हृदय इतना ऊँचा हो सकता है ! और हम स्त्रियाँ—केवल विस्मयकी दृष्टिसे अवाक् होकर ताकती रहती हैं । इन मर्दोंके पैरोंकी धूलके समान भी तो हम नहीं हैं ।

सुशी०—क्यों दीदी ?

विनो०—समझ नहीं सकीं कि पिता तुमको कितना प्यार करते हैं। समझ नहीं सकीं कि स्वामीको हाथमें पाकर भी उसने कर्त्तव्यके लिए—तुम्हारे पिताके प्रति तुम्हारे कर्त्तव्यके लिए—उसे मुट्ठीभर धूलकी तरह फेंक दिया। यह तुम नहीं समझ सकीं।

सुशीला—अपने पिताके प्रति जो मेरा कर्तव्य है, उसे मैं जानती हूं। किसीके समझानेकी जरूरत नहीं है।

विनोदिनी—कुछ नहीं जानतीं। कुछ नहीं समझतीं। अँगरेजी-शिक्षाने तुम्हें केवल अहंकार सिखाया है। वह और कुछ नहीं सिखा सकी।

सुशी०—दीदी ! मैं तुम्हारा लेक्चर नहीं सुनना चाहती।—जाओ।

विनो०—तुम क्या यह सोचती हो कि पिता तुम्हें कम प्यार करते हैं ? वे तुम्हें हाथ-पैर बाँधकर पानीमें बहाये देते हैं, तो क्या तुम समझती हो कि उन्हें बड़ा सुख हो रहा है ? तुम क्या समझोगी कि उनके विशाल हृदयमें सन्तानके लिए कितनी व्यथा, कितनी चिन्ता और कितनी वेदना है !

सुशी०—जो कुछ समझती हो सो सब तुम्हीं।

विनो०—हाँ मैं समझती हूँ। मैंने देखा है, कितनी ही बड़ी बड़ी रातोंको उनकी आँखोंमें नींद नहीं आई—लम्बी लम्बी रातें जागकर और करवटें बदलकर ही उन्होंने बिता दी हैं। मैं सिरहाने बैठी पंखा डुलाती रही हूँ। मैंने अपने हाथसे उनके लिए स्वादिष्ट भोजन बनाया है; उन्होने कौर मुँहमें रखना चाहा है और वह हाथसे गिर पड़ा है। वे बातें करते करते अनमनेसे होकर बेसिर-पैरकी बातें करने लगे हैं। उनकी चिन्तापर मैंने लक्ष्य किया है, तुमने नहीं किया।

सुशी०—तो फिर वे क्यों अपनी इच्छासे इतना कष्ट भोग रहे हैं ?

विनो०—एक दिन समझोगी । आज समझमें नहीं आता । क्यों कि इस समय तुमको केवल स्वार्थ घेरे हुए है, तुम्हारे हृदयमें अहंकार छाया हुआ है । एक दिन—जिस दिन त्यागकी सेना आकर इस हृदयके दुर्गसे स्वार्थको निकाल देगी, और अहंकारका कुहासा उड़ जायगा—उस दिन समझोगी ।

सुशी०—दीदी, पिता जानते हैं और वे दस आदमियोंसे कह भी चुके हैं कि मैं अपने मनके माफिक चलनेवाली अबाध्य लड़की हूँ । इस स्वभावको सुधारनेकी अवस्था अब मेरी नहीं है ।—मैं समाजके चरणोंमें अपनी बलि नहीं दूँगी ।—चाहे प्राण रहें, चाहे जायँ, मेरा यही प्रण है ।

विनो०—तो फिर मैं क्या कर सकती हूँ बहन ।

(प्रस्थान ।)

सुशी०—कन्याके लिए एक मर्द ढूँढ देनेसे काम । कन्याके गलेमें दासताकी फाँसी डालनी ही होगी । देखूँ, किसकी मजाल है कि जबरदस्ती मेरा ब्याह कर दे ।

[कामिनीका प्रवेश ।]

कामि०—सुशीला !—यहाँ अकेले क्या कर रही है बेटी ?—आ, हाथ पैर धो ले । तेरी चोटी बाँध दूँ । वर आ रहा है ।

सुशी०—वर आ रहा है, या यमराज आ रहे हैं ? उसके लिए साज-सिंगारकी क्या जरूरत है ? शरीरमें धूल भरी रहनेपर भी यमराज किसीको नहीं छोड़ते ।

महेन्द्र—यह भी नहीं जानता।

केदार—सो जानकर ही क्या लाभ होगा? मैं तो अब ठहर नहीं सकता। लेकिन बड़ी जरूरी बात है, बिना कहे जा भी नहीं सकता। (ऊपरकी ओर देख कर कुछ सोचकर) आः! पृथ्वीके ऊपर ये घटनायें क्यों होती हैं? कोई विशेष आवश्यकतासे मिलने आया तो आप बाहर चले गये! इसीसे कहना पड़ता है कि ईश्वर नहीं है। अगर है तो सिद्ध करो। होता, तो ऐसा क्यों होता? मैं श्रीरामपुरसे—इतनी दूरसे—सिर्फ एक बात करनेके लिए दौड़ा आ रहा हूँ; मगर आप घरमें नहीं हैं। (घड़ी देखकर) अब नहीं ठहर सकता। बाईस मिनट रह गये!—तुम अपने बाबूसे कहना—नहीं, मुकद्मेकी बात तुम क्या समझोगे।—नहीं, अच्छा सुनो, जितना याद रख सको, अपने बाबूसे उतना ही कह देना। कहना कि मैं सब ठीक कर आया हूँ। सालेको करने दो मुकद्मा दायर।

महेन्द्र—किसे? यज्ञेश्वर बाबूको?

केदार—आँय! वह साला जगुआ, बाबू कबसे हो गया? वह साला पाजी लुच्चा हरामजादा शैतान भंगीसे भी बदतर है।

महेन्द्र—वे शायद अब नालिश नहीं करेंगे।

केदार—डर गया! जैक्सन साहब बैरिस्टरके पास मै गया था—इसीसे डर गया! अब करो भैया मुकद्मा—मैं भी देखूँ! नालिश क्या करेगा जगुआ—दस्तावेज ही असली साबित न होगी! साला डर गया!

महेन्द्र—जी यह बात नहीं है केदार बाबू! यज्ञेश्वरके साथ मँझली बहनका ब्याह है।

केदार—ब्याह ! क्या ! अरे भाई ब्याह कैसा !! (छड़ी रखकर) विधिपूर्वक ब्याह है ?

महेन्द्र—आज बातचीत पक्की हो जायगी। वे लोग लड़की देखने आवेंगे—'शुभदृष्टि' होगी।

केदार—शुभदृष्टि कैसी ! अरे भाई शुभदृष्टि कैसी ?—कुछ बातचीत नहीं, एकदम एक साँसमें लड़कीको देखना, पसंद करना, शुभदृष्टि और बातचीत पक्की—सब हो जायगा ! मुझे मालूम भी नहीं हुआ ! बातचीत पक्की हो जायगी—कब ?

महेन्द्र—आज।

केदार—(कुछ सोचकर) अच्छी बात है ? तो यह ब्याह नहीं होगा। मैं आज यहीं भोजन करूँगा? जाकर कह दे। जो हो, वही भोजन कर लूँगा—अधिक उद्योग न करें।—सुशीला कहाँ है ?

महेन्द्र—देख नहीं पड़ती।

केदार—इस ब्याहके लिए वह राजी तो नहीं है न ?

महेन्द्र—सो मैं क्या जानूँ।

केदार—वह राजी भी होगी तो क्या—यह ब्याह नहीं होने पावेगा।—लो वह सुशीला भी आ गई।

[सुशीलाका फिर प्रवेश।]

केदार—तुम्हारा ब्याह है बेटी ?

[सुशीला चुपचाप दरवाजा पकड़े केदारकी ओर देखती खड़ी रहती है।]

केदार—यह ब्याह नहीं होगा। मैं किसी तरह नहीं होने दूँगा।—बेटी, इस ब्याहके लिए तुम राजी तो नहीं हो ?

[सुशीला चुप रहती है।]

हरि—ज़रा आँखोंसे दिखाई कम देता है तो कौन कहेगा कि इनकी अवस्था पचीस वर्षसे अधिक होगी ?

सदा०—मगर दाँत भी लगवाले होंगे !

शंकर—क्या सोच रहे हो देवेन्द्र बाबू ! अब देर क्यों है ?

देवे०—ना—यही—सो—आशीर्वाद करूँ सदानन्द ?

सदा०—तुम्हारी इच्छा ।

देवे०—सदानन्द, तुम जीसे यह काम करनेके लिए जबतक नहीं कहते तबतक मैं कुछ नहीं कर सकता । तुम कहो भाई, तो मैं खुशीसे आशीर्वाद करूँ ।

उपे०—मैं कहता हूँ ।

नवीन—प्रभु कह रहे हैं ।

देवे०—(सदानन्दसे) ना, तुम कहो ।

सदा०—मैं क्या कहूँ ? तुम्हारी लड़की है और तुम्हारा दामाद है ।

देवे०—तब भी एक शुभ कार्य कर रहा हूँ; तुम प्रसन्न मन और प्रसन्न मुखसे सम्मति जबतक नहीं देते, तबतक मनमें एक खटकासा लगा हुआ है । तुम जी खोल कर कहो । आशीर्वाद करूँ ? सदानन्द, तुम मेरे लड़कपनके साथी और मित्र हो । इस समय तुम चुप हो ! तुम्हारे मुखमें हँसी देखे विना मैं इस शुभ-कार्यमें हाथ नहीं डाल सकता ।—बोलो भाई !

सदा०—अगर बोलनेकी कहते हो तो कहता हूँ । तुम अपनी लड़कीका यह व्याह करनेके बदले यदि उसे हाथ-पैर बाँधकर पानीमें बहा दो, तो कहीं अच्छा होगा ।

हरि—क्यों सदानन्द बाबू ?

शंकर—यह आप क्या कह रहे हैं ?

उपे०—मैं कह रहा हूँ देवेन्द्र, क्या सदानन्दका कहना मेरे कहनेसे बढ़कर होगया ? मैं तुम्हारा सगा और बड़ा भाई हूँ—मैं कहता हूँ ।

नवीन—प्रभू कहते हैं ।

सदा०—उपेन्द्र बाबू, नहीं जानता, आप क्यों कह रहे हैं । लेकिन आपके स्नेहके पर्देके भीतर जान पड़ता है जैसे एक कुटिल कटाक्ष खेल रहा है । आपके स्वरसे जान पड़ता है, जैसे आप एक छुरेपर धार रख रहे हैं—यह तो समझमें आ रहा है, मगर यही समझमें नहीं आता कि उस छुरेकी धारसे आप किसका गला काटेंगे ? क्या अपनी भतीजीको जिबह करेंगे ? पर यह मैं अपनी कल्पनामें नहीं ला सकता हूँ ।

हरि—आप कहते क्या हैं सदानन्द बाबू ! आप महर्षिसे ऐसी बातें कहते हैं ?

सदा०—तुम लोगोंके इस प्रश्नका उत्तर देना मुझे जरूरी नहीं जान पड़ता । तुम क्षुद्र जीव हो । लेकिन आप—उपेन्द्र बाबू ! आप—इतने नीच हृदयके भण्ड हैं ? बड़े दुःखकी बात है कि और कोई भलमंसीकी गाली मुझे ढूँढ़े नहीं मिली ।

नवीन—महाप्रभुको—

उपेन्द्र—चुप रहो नवीन ।—सदानन्द बाबू, दस आदमी अगर मुझपर भक्ति श्रद्धा रखते हैं, तो इसमें मेरा क्या दोष है ? वृक्षकी परिणति फलमें होती है । अगर दस आदमी उस फलको खाकर वृक्षकी बड़ाई करें तो वह दोष क्या वृक्षका है ?

सदा०—उपेन्द्र बाबू, माफ कीजिएगा, मैंने आपको गाली दी है । कारण, आप चाहे जैसे हों—देवेन्द्रके बड़े भाई हैं । पहले कभी मैंने आपको गाली नहीं दी । पर अब इन बातोंको जाने दो ।—देवेन्द्र, इस व्याहके लिए तुम्हारी लड़की राजी है ?

देवे०—मुझे मालूम नहीं ।

उपे०—ब्याहके लिए लड़कीका राजी होना कैसा ?

हरि—हाँ, यह तो एक नई बात है ।

नवीन—अरे भाई, जब महाप्रभु कह रहे हैं—

(सदानन्द एक बार उपेन्द्रकी ओर घृणाकी दृष्टि डालते हैं ।)

सदा०—देवेन्द्र, अगर तुम लड़कपनमें उसका ब्याह कर देते, तो लड़कीकी सम्मति लेनेकी जरूरत न होती । लेकिन जब १५-१६ वर्षकी अवस्था तक तुमने उसका ब्याह नहीं किया, उसे उच्च शिक्षा दिलाई, तब कमसे कम उसके भविष्यके विषयमें उसका जो मत हो उसकी उपेक्षा तुम नहीं कर सकते ।

यज्ञे०—देखिए सदानन्द बाबू, आप इस शुभकार्यमें क्यों बाधा डाल रहे हैं ? देवेन्द्र बाबू, मैं मय सूद असल भी छोड़े देता हूँ ।

सदा०—देवेन्द्र, पहले कन्याकी राय ले लो ।

उपे०—कन्या इस बारेमें कभी 'नाहीं' न करेगी । हमारी राय ही उसकी राय है ।

(कई आदमियोंके साथ केदारका प्रवेश । सबके हाथमें लाठियाँ हैं ।)

केदार—यह लो मैं आ गया । ठीक समयपर आया ।

सदा०—अरे यह तो केदार है !—भाई, यह क्या है ?

केदार—यह फिर बताऊँगा । पहले इस पाजी कुत्तेको—(यज्ञेश्वरसे) उठो भैया बन्ने, निकलो यहाँसे !

यज्ञे०—यह क्या !—देवेन्द्र बाबू—

केदार—कहता हूँ, उठ साले अकालकूष्माण्ड, सड़े कटहल, खट्टे आम !—उठ—निकल ।

देवे०—यह क्या करते हो, केदार !

केदार—चुप रहो, नहीं झगड़ा हो जायगा। (यज्ञेश्वरसे) उठ साले लद्दू टाँघन, बौरहे कुत्ते, उठ, नहीं तो मारता हूँ सिरपर लठ! सालेका एक पैर गंगाजलमें और दूसरा यमराजके मुँहमें है—इस समय, इस पनमें, व्याह करने आया है! उठ साले लुच्चे, लफंगे, टुच्चे, कमीने, पाजी—

यज्ञे०—तुम मुझे गालियाँ क्यों दे रहे हो?

उपे०—केदार, तुम तो यह गँवारोंका ऐसा व्यवहार कर रहे हो!

केदार—महर्षि भी मौजूद हैं! यही तो मैं सोच रहा था कि देवर्षि हैं, मगर महर्षि कहाँ हैं? (यज्ञेश्वरसे) उठ साले, नहीं तो अभी जूते झाड़ने लगूँगा।

सदा०—अजी ओ केदार!—

केदार—सदानन्द बाबू, कहता हूँ, आप कुछ न कहिएगा। मुझे ट्रेनके लिए देर हो रही है। मगर इन सब सुअरके बच्चोंको यहाँसे निकाले बिना नहीं जाऊँगा। सीधी बात है। ये साले सीधी तरह कहनेसे उठ जायँगे तो भला, नहीं तो मुझे लाठीसे काम लेना पड़ेगा। बिलकुल सीधी बात है। उठेगा साले काले बिलैंटे, कि दो चार लातें खानेको जी चाहता है?

हरि—यह तो बड़ा अन्याय है! भले आदमीका ऐसा अपमान!

केदार—चुप रहो! तुम सब साले खुशामदी टट्टू, चपड़कनातिये, चंडूल, चमगीदड़ हो!

शंकर—क्या केदार बाबू, हम सबको गालियाँ दे रहे हो?

केदार—चुप रह उल्लू!

शंकर—क्या! तुम मुझे उल्लू बना रहे हो?

केदार—बना क्या रहा हूँ, तुम तो बने-बनाये उल्लू हो।

यज्ञे०—देखो, तुम लोग भले आदमीकी तरह रहो—मारपीट न करना ।

शंकर—फिर अगर उल्लू कहोगे तो—

(आस्तीन समेटता है।)

केदार—हाँ हाँ, फिर कहता हूँ—उल्लू !

शंकर—फिर कह रहे हो ?

केदार—हाँ कहता तो हूँ !

शंकर—अच्छा, कहो, देख लूँगा ।

केदार—मुझे देर हुई जा रही है ।—सदानन्द बाबू, अब मेरा अपराध नहीं है ?—(यज्ञेश्वरसे) निकल सड़े आमके छिलके, उठ । (घुटना मारता है ।)

यज्ञ०—घुटना मार रहे हो ?

केदार—हाँ मारता हूँ । क्या मालूम नहीं पड़ता ? लो फिर मारा । (घुटना मारता है) मालूम पड़ा ? (साथियोंसे) भाइयो, चलाओ लाठी ।

यज्ञ०—अच्छा जाता हूँ; मगर याद रक्खो, नालिश करूँगा—छोड़ूँगा नहीं । देख लूँगा ।

(यज्ञेश्वर और उपेन्द्रके भक्तोंका प्रस्थान । हरि और शंकर 'देख लेंगे' कहते हुए जाते हैं ।)

केदार—अच्छा देख लेना सालो, तुम सब साले कुत्ते हो । और यह साला यज्ञेश्वर, दो दिनमें मरनेवाला है, मगर ब्याह करने आया था !—महर्षि, और आप तो अपने दलसे बिछुड़ कर मैले कपड़ेके फटे चीथड़ेकी तरह पड़े ही रह गये ! घर जाइए, जा कर गीता पढ़िए ।

उपे०—इसके लिए तुम्हें जेल जाना पड़ेगा । (प्रस्थान ।)

केदार—एक सौ दफे जानेको तैयार हूँ । अपने कर्त्तव्यका पालन तो किया; फल देना ईश्वरके हाथमें है ।

सदा०—केदार, लोग गीताका पाठ करते हैं, लेकिन भाई तुम गीताका अनुष्ठान करते हो । आओ, तुम्हें गलेसे लगा लूँ ।

(केदारको गलेसे लगाकर प्रस्थान ।)

केदार—अब ठीक तीन मिनटका समय बाकी है ।

देवे०—यह तुमने क्या किया केदार ?

केदार—कुछ कहना नहीं—झगड़ा हो जायगा । १२ और ५=१७; अभी ट्रेन मिल जायगी ।—देवेन्द्र, अगर फिर तुमने इस जगुआके साथ लड़कीका ब्याह करना चाहा तो अच्छा न होगा । बस, कह दिया । अगर तुम यह ब्याह करोगे तो समझ रक्खो, मेरे एक ही घूसेसे तुम्हारी लड़की विधवा हो जायगी । कहे रखता हूँ ।

(प्रस्थान)

(देवेन्द्र अकेला सोचमें बैठा रहता है ।)



दूसरा अंक।

पहला दृश्य।

स्थान—देवेन्द्रका घर। समय—सन्ध्याकाल।

[देवेन्द्र और सदानन्द।]

देवे०—एक महीनेकी कैद हो गई ? कहते क्या हो !

सदा०—जेल न जाना पड़ता; दस पंद्रह रुपये जुर्माना हो जाता। मगर केदार तो एक अद्भुत आदमी है—अपने हाथों जेल गया।

देवे०—कैसे ?

सदा०—हाकिमने पूछा—" तुमने मारा ? " केदारने उत्तर दिया—" हाँ खूब मारा। " हाकिमने कहा—" इसके लिए तुम दुःखित होओगे ? " केदारने कहा—" जी बिल्कुल नहीं; जरूरत पड़ेगी तो फिर भी मारूँगा ! "

देवे०—बेचारा मेरे कारण जेल गया। बापने लड़कीकी हत्या करनेके लिए खड्ग उठाया था, केदारने सामने आ कर उस खड्गका बार अपनी छातीपर ले लिया ! बापके हाथसे लड़कीको बचानेके लिए—ओः !—

सदा०—तुम आज नौकरीपर नहीं जाओगे ?

देवे०—जेल गया !—मेरे लिए !

सदा०—तुम्हारी छोटी लड़कीका बुखार कैसा है ?

देवे०—मेरे लिए—मेरी लड़कीके लिए—जेल !—और मैं उस लड़कीका बाप हूँ—ओः !

सदा०—डाक्टर आये थे ?

देवे०—समाज !—

सदा०—यह क्या ! एकटक क्या देख रहे हो ?

देवे०—खूब समाज है !—सदानन्द ! हिन्दू समाजमें गरीबके घर लड़कियाँ क्यों पैदा होती हैं—जानते हो? बता सकते हो ? इस नीच बाजारमें स्वर्गकी देवियाँ क्यों उतर आती हैं ?—उनका अपराध क्या है ? क्या अपराध है ?

सदा०—समाजको दोष क्यों देते हो देवेन्द्र, दोष समाजका नहीं—दोष तुम लोगोंका है। पढ़ने-लिखनेकी उमरमें ब्याह क्यों करते हो ?

देवे०—मेरा ब्याह तो पिताजी कर गये थे।

सदा०—बापकी भूलसे लड़के कष्ट पाते हैं—यह आज कुछ नई बात नहीं है।

देवे०—ना, उनका कुछ दोष नहीं है। उन्होंने माके द्वारा मेरी राय पूछी थी। अच्छी तरह मुझे याद है, मैंने स्वीकार-सूचक सिर हिलाया था। तब सोचा था कि ब्याहके इस नन्दन-वनमें केवल पारिजात फूलते हैं, कोयल गान गाती है, और केवल सुगंध-स्निग्ध मलय पवन मनको मगन बनाता है। तब क्या मैं यह जानता था—ओः !—अब इस फंदेसे निकलनेका उपाय नहीं है !—निकलनेका उपाय नहीं है !—कोई भी उपाय नहीं है सदानन्द ?

सदा०—उपाय तुम्हें एक दिन बता चुका हूँ।

उमे०—स्वार्थत्याग करो देवेन्द्र, केवल स्वार्थत्याग करो । अहा स्वार्थत्याग कैसा मधुर है ! मैं स्वार्थत्यागको पूरी तौरसे निबा-हनेकी शक्ति नहीं रखता—लेकिन उसके लिए कोशिश करता रहता हूँ । नारायण ! श्रीहरि !! गोविन्द !!!

देवे०—स्वार्थत्याग करूँ ! किसके लिए दादा ? इस समाजके लिए ? मैं अपना सुख और कन्याका सुख शायद बलि चढ़ा सकता—यदि उस बलिके मांससे समाजका पेट भर जाता । खा खा कर समाजके पेटका घेरा बहुत बढ़ गया है । समाजका उच्छृंखल अत्याचार बहुत बढ़ गया है । मैं उसे नहीं मानूँगा ।

उमे०—मगर सोचो तो देवेन्द्र, अपने प्रति भी तुम्हारा कुछ कर्त्तव्य है । निर्वासन हो आनेवाले बापके बेटेके साथ ब्याह करनेसे समाज तुमको ' अलग ' कर देगा ।

देवे०—न हूँगा समाजसे अलग ही रहूँगा । इसमें अब कुछ अपमान भी नहीं है—बल्कि गौरव है । जहाँ विद्यासागर, राममोहन राय, केशवचंद्र सेन, जैसे महापुरुष समाजसे अलग किये जाते हैं वहाँ अलग होनेमें लज्जा नहीं है । समाज अलग किसे करता है ? जो अन्त्यजोंको गले लगाता है; जिसका बाप अपघातसे मरता है और वह प्रायश्चित्त नहीं करता; जिसका हृदय विधवा बालिकाके दुःख दे-खकर फटने लगता है; जो धनके अभावसे कन्याका ब्याह अधिक अवस्था तक नहीं कर सकता; जिसकी स्त्री खानेका सुभीता न होनेके कारण मेहनत-मजूरी करने घरसे बाहर निकलती है; जो विद्या पढ़नेके लिए विलायत जाता है; उसीको समाज अलग करता है । लेकिन जो लंपट है, व्यभिचारी है, जालिया है, चोर है, स्त्री-हत्या करनेवाला है, जो तीन तीन बार जेल काट आया है, जो सैकड़ों निरीह प्रजाओंके घर जला

कर शरीकदारका घर खुदवाकर—दो चार खून कराकर—उन्हीं रक्तरंजित हाथोंसे रुपये लुटा सकता है, उसके सिरपर यह सनातन समाज सादर स्नेहका हाथ फेरता है । विद्यासागर समाजसे अलग कर दिये गये, और व्यभिचारी ढोंगिये परमधार्मिक समझे जाते हैं । दादा, मैं ऐसे समाजसे अलग ही रहूँगा ।

उपे०—समझ गया भाई । अगर तुम शास्त्र पढ़े होते देवेन्द्र ! मैं यह स्पर्धा नहीं करता कि सब संस्कृत शास्त्र मैं पढ़ चुका हूँ । मगर हाँ हिन्दुओंके कुछ प्रधान प्रधान शास्त्र अवश्य पढ़े हैं ।

देवे०—उसका फल तो आँखोंके आगे ही मौजूद है । इन दोमेंसे एक चुन लेना कुछ कठिन नहीं है । मैंने चुन लिया है ।

उपे०—देवेन्द्र !—

देवे०—ना दादा, मैं तुमसे कोई उपदेश लेना नहीं चाहता । जाओ, अपना उपदेश वैष्णव सम्प्रदायमें बाँटो । मुझे नहीं चाहिए ।

उपे०—तो फिर तुम्हारी जो इच्छा हो वही करो । मधुसूदन ! नारायण ! श्रीहरि ! गोविन्द !!　　(प्रस्थान ।)

देवे०—अगर इस विषयमें कुछ दुविधा भी थी दादा, तो वह तुम्हारे आचरणसे दूर हो गई । अब मुझे कोई दुविधा नहीं है ।

[कामिनीका प्रवेश ।]

देवे०—सुशीलाकी मा, उत्सव करो—आनन्द मनाओ ।

कामि०—क्यों ?

देवे०—मैं बन्धमुक्त होने जा रहा हूँ । समाजका बन्धन तोड़ कर, पिंजरा तोड़कर, बाहर निकलने जा रहा हूँ । मेरे साथ तुम भी चलोगी ?

कामि०—कहाँ ?

किसी अपराधके, केवल प्रजाका मनोरंजन करनेके लिए, सीताको घरसे निकाल दिया और सोचा कि बड़े भारी स्वार्थत्यागका काम किया । जान पड़ता है, प्रजाके मनोरंजनके लिए वे अपनी माका सिर काटनेको भी तैयार थे । धर्मराज युधिष्ठिरने चौसरके खेलमें द्रौपदीको भी दावपर लगा दिया । धर्मराज थे न ! इस जातिका सर्वनाश न होगा तो किसका होगा ? वंशपरंपरासे करोड़ों नारियोंकी आहें उनके आँसुओंके जलमें मिलकर भाप बनकर आकाशमें छा रही हैं, और वे आज अभिशापके रूपमें उतरकर इस जातिके ऊपर विषकी वर्षा कर रही हैं । ऐसा क्यों न होगा ? इतनी बड़ी स्वार्थ-पर जाति है कि जिसे अबला कहकर पुकारती है, उसीके ऊपर वंशपरंपरासे अत्याचार करती चली आ रही है ! इस जातिका मटियामेट न होगा तो और किसका होगा ?

विनो०—सुशीला, तू एक साँसमें बहुतसी बातें कह गई । लेकिन बहन, तूने एक ही ओर दृष्टि डाली है । पुरुष यद्यपि स्त्री-जातिके ऊपर होनेवाले इस अविचार और अत्याचारके जिम्मेदार हैं, तो भी सोचकर देखो, हमारे देशमें स्त्रियोंको इतने गुणोंसे अलंकृत किसने किया है ? उन्हीं सताई गईं, त्यागी गईं, सीतादेवीने मरनेके समय भी कहा था कि "जन्मजन्मान्तरमें मुझे रामचन्द्र ही पति मिलें"—यह बात इस देशके सिवा और किस देशकी—किस जातिकी—कौन स्त्री आजतक कह सकी है ?

सुशी०—और किस देशका पुत्र पिताकी आज्ञासे माताका सिर काट सका है ? दीदी, अब और कुछ न कहो; क्रोधके मारे मेरा सारा शरीर जैसे जला जा रहा है । हमारे देशके पुरुषोंने पतिको ही नारीका एकमात्र प्रेय, ध्येय और श्रेय कहा है । उन्होंने स्त्रियोंके आगे यही आदर्श खड़ा कर रक्खा है । अपने स्वार्थकी सिद्धिके लिए, समा-

जने इस अभागिनी नारी-जातिके वास्ते ही सब कठोर नियम बनाये हैं । पुरुष वेश्या रक्खें, अस्सी सालकी अवस्थाके बाद तक दस दफे बालिकाओंसे ब्याह करें, स्त्रियोंको लातोंसे मारें, समाज सब सह लेगा । केवल नारी-जातिके लिए यह कड़ा नियम है कि वह पुरुषोंके सुखकी सामग्री बनी रहे—उसने जरा भी चूँ की कि सर्वनाश हो गया ।

विनो०—बहन, पुरुषोंकी जाति अगर खराब ही है, तो हम क्यों अपना आदर्श छोड़ दें ? पुरुष-जाति अगर स्वार्थपर है, तो तुम उन्हें महत् हृदयवाला बनाओ । वे लोग कुछ हमारे शत्रु तो हैं ही नहीं कि हम उनसे उनके अन्यायका बदला चुकाने बैठें । बहन, नम्रता धारण करो, सहनशीलता ग्रहण करो । सहनेके लिए ही स्त्रीका जन्म है । दूसरेके लिए जीवन उत्सर्ग करना ही उसका जीवन है । ईश्वरने पुरुष और स्त्रीको समान बनाकर नहीं पैदा किया है । मेरा विश्वास है कि इस दुर्दिनमें भी हिन्दूलोग जो अपना सिर ऊँचा कर सकते हैं सो इस नारी-जातिके चरित्र और धर्मके बलसे ही । बहन, वह चरित्र और धर्मका बल न गवाँना ।

सुशी०—रहने दो, अब और कुछ कहनेकी जरूरत नहीं है । तुमसे हो सकता है—मुझसे नहीं हो सकता । तुम्हें विश्वास है—मुझे नहीं है । बस । (प्रस्थान ।)

[महेन्द्रका प्रवेश ।]

महे०—यह नोटोंका बंडल है, अब मेरे बराबर कौन है ? अब की—हूँ हूँ, रामलाल बाबूको देख लूँगा—

विनो०—महेन्द्र !

महे०—(चौंक कर) कौन ? दीदी ? (नोट छिपाता है ।)

जनम-मरणके चक्करमें हम, घूम घूमकर मरते ।
क्यों घूमें सो नहीं जानते, ऐसी है नादानी ॥—मेरी० ॥
निशिदिन जगतके बीच खींच कर प्राणोंको हम लाते ।
कठिन प्राण फिर भी कैसे हैं, कैसी ऐंचातानी ॥—मेरी० ॥
इन प्राणोंकी भूख न तब भी जाती यह अचरज है ।
क्यों ऐसा होता सो जानें, वह ईश्वर ही जानी ॥—मेरी० ॥
जो हो, फिर भी आँखें तेरी ओर लगी जो होवें ।
तो घूमना धन्य यह मानूँ, हो मेरी मनमानी ॥—मेरी० ॥

[एक कैदीका प्रवेश ।]

केदार—तुम कौन हो ?

कैदी—मैं एक कैदी हूँ ।

केदार—देखनेसे तो तुम कोई भले आदमी जान पड़ते हो । तुम कैसे जेलमें आये ? जान पड़ता है, तुम भी मेरी ही तरह कोई अच्छा काम करके आये हो ?

कैदी—नहीं बाबू, मैं यहाँ खराब काम न करनेके कारण आया हूँ ।

केदार—कैसे ?

कैदी—अच्छा तो सुनिए । उपेन्द्र बाबूने कहा कि मुझे उनके जाली वसीयतनामेका गवाह बनना पड़ेगा । पर मैं असल वसीयतनामेका गवाह हूँ, फिर जाली वसीयतनामेका गवाह कैसे बनता ? इसीसे बिगड़ कर उपेन्द्र बाबूने एक झूठे मुकदमेमें मेरा चालान करा दिया—मुझे जेल आना पड़ा । वे वकील हैं—सब कर सकते हैं ! ओः ! बड़ी प्यास लग रही है—

केदार—हूँ, मामला तो बड़े मतलबका है । अच्छा, असल वसीयतनामा और जाली वसीयतनामा कैसा बताया ?

कैदी—उपेन्द्र बाबूके पिता जो वसीयतनामा लिख गये थे उसमें उनकी जायदादके तीन हिस्से छोटे लड़के देवेन्द्रके नाम लिखे थे, और एक हिस्सा बड़े लड़के उपेन्द्रके नाम था। यह भी लिखा था कि उनकी दोनों लड़कियाँ गुजारेके लिए हर महीने प्रामिसरी नोटोंका सूद पावेंगीं। मैं और तीन आदमी और—गदाधर, किशोरी और हरिपद—उस वसीयतनामेके गवाह थे। उसके बाद उपेन्द्र बाबूने और एक जाली वसीयतनामा तैयार करके—ओः, अब बोला नहीं जाता, थोड़ासा पानी दो।

केदार—ओहो! समझ गया; अब—अब बड़ा मजा होगा। बस जेलके बाहर निकलने भरकी देर है। हाँ उन तीन गवाहोंके नाम क्या बताये? यज्ञेश्वर, हरिपद, और क्या?

कैदी—यज्ञेश्वर नहीं,—गदाधर, हरिपद, किशोरी।

केदार—हाँ हाँ वही किशोरी। वे तीनों आदमी कहाँ हैं?

कैदी—गदाधर और हरिपद काशीवास करते हैं और किशोरी शायद मुजफ्फरपुरमें हैं। मेरे जेल आनेके पहले वे वहाँ वकील थे। थोड़ा पानी दो, गला सूखा जा रहा है। अब नहीं बोला जाता—जल दो।

केदार—आओ। जल क्या—तुम्हारी मियाद पूरी होनेके दूसरे ही दिन मेरे घर तुम्हारी जलपानकी—आलूबुखारेका शरबत पीनेकी—दावत रही। ओः! यह मामला है! अब मेरे बराबर और कौन है?

(नाचता है।)

कैदी—यह क्या! तुम क्या पागल हो?

केदार—(नाचता हुआ) ता धिन्ना ता धिन्ना धिक धिक धिन्ना! —गवाहोंके नाम क्या बताये? गदाधर,　　　　द—

कैदी——श्यामापद नहीं, हरिपद।

केदार——हाँ हाँ हरिपद। और कौन?

कैदी——किशोरी।

केदार——ठहरो, याद कर लूँ। श्यामापद, हरिपद, किशोरी।

कैदी——श्यामापद नहीं, गदाधर।

केदार——हाँ हाँ। गदाधर, गदाधर, किशोरी।

कैदी——दोनोंका नाम गदाधर नहीं है—एकका नाम हरिपद है।

केदार——हाँ हाँ। हरिपद——हरिपद।

कैदी——तुम्हें याद न होंगे।

केदार——क्यों?

कैदी——बीस दफे कह चुका, गदाधर——हरिपद——किशोरी।

केदार——ठीक है। गदाधर——हरिपद——किशोरी। गदाधर——हरिपद——किशोरी। गदाधर——हरिपद और एक नाम क्या?

कैदी——किशोरी——किशोरी।

केदार——हाँ हाँ, किशोरी,——किशोरी।

कैदी——हाँ।

केदार——लेकिन इन सबका पूरा नाम चाहिए। गदाधर कौन?

कैदी——गदाधर सेन रिटायर्ड सबजज।

केदार——गदाधर सेन रिटायर्ड सबजज। गदाधर सेन रिटायर्ड सबजज। सबजज——सबजज——सबजज। और?

कैदी——हरिपद मल्लिक——सामुकके जमींदार।

केदार——और?

कैदी——किशोरीलाल बनर्जी, मुजफ्फरपुरके वकील। जरासा जल

केदार—अभी देता हूँ । श्यामापद मल्लिक रिटायर्ड—सबजज, सबजज ।

कैदी—श्यामापद मल्लिक किसने कहा?

केदार—फिर?

कैदी—गदाधर सेन ।

केदार—ठीक है, ठीक है । गदाधर सेन—गदाधर सेन ।

कैदी—जरासा पानी दो न ।

केदार—उसके बाद किशोरीलाल मल्लिक सामुकके वकील—क्यों न?

कैदी—बिल्कुल नहीं । किशोरीलाल बनर्जी, मुजफ्फरपुरके वकील । जरासा पानी दो, मैं प्यासके मारे मर रहा हूँ ।

केदार—लो अभी देता हूँ । किशोरीलाल बनर्जी, मुजफ्फरपुरके वकील । गदाधर सेन—रिटायर्ड सबजज । रिटायर्ड सबजज । आओ—तुम क्या खाओगे? खाली जल पियोगे? या शरबत और फालूदा पियोगे?—ना, ये चीजें तो यहाँ मिल नहीं सकतीं । क्या करूँ?

कैदी—मुझे सिर्फ पानी दो, तो बड़ा उपकार करो ।

केदार—अच्छा चलो । किशोरी मल्लिक, रिटायर्ड सबजज । रिटायर्ड—

कैदी—वही फिर किशोरी मल्लिक? किशोरीलाल बनर्जी ।

केदार—हाँ हाँ, बनर्जी—बनर्जी ।

कैदी—मुजफ्फरपुरके वकील ।

केदार—वकील, वकील । याद जरूर करूँगा—चाहे जितने दिन लग जायँ ।

(दोनोंका प्रस्थान ।)

तीसरा दृश्य ।

स्थान—देवेन्द्रका घर । समय—दोपहर ।

[देवेन्द्र और कामिनी ।]

कामि०—लड़की ब्याह नहीं करना चाहती, तो मैं क्या करूँ, बताओ ?

देवे०—ब्याह करना नहीं चाहती ?

कामि०—नहीं ।

देवे०—हूँ ।

कामि०—अब क्या उपाय किया जाय ?

देवे०—काहेका उपाय ? यह तो अच्छी बात है । खर्च बच गया ।

कामि०—काहेका खर्च ?

देवे०—ब्याहका खर्च । यह जरूर है कि सदानन्द रुपये न लेते, लेकिन ब्याह करनेमें और भी तो खर्च होता है । वही खर्च बच गया ।

कामि०—तुम यह क्या कह रहे हो ?

देवे०—बहुत ठीक कह रहा हूँ ।

कामि०—तो लड़कीका ब्याह नहीं करोगे ?

देवे०—लड़की ब्याह करनेको राज़ी नहीं है, मैं क्या करूँ ?

कामि०—तुम समझाकर कहो ।

देवे०—ना, यह न होगा ।

कामि०—तो लड़की क्वाँरी रहेगी ?

देवे०—हाँ, जब ब्याह नहीं होता है, तब लड़की क्वाँरी ही कहलाती है ।

कामि०—बिरादरीके लोग अलग कर देंगे !

देवे०—उसके लिए तो मैं पहलेहीसे तैयार बैठा हूँ।

नेपथ्यमें—देवेन्द्र, घरमें हो ?

देवे०—आओ भाई सदानन्द !—(कामिनीसे) अब तुम भीतर जाओ। (कामिनीका प्रस्थान ।)

देवे०—जाने दो, व्याहका झगड़ा ही मिट गया ।

[सदानन्दका प्रवेश ।]

सदा०—सुना, तुम्हारा शरीर अस्वस्थ हो गया था ।

देवे०—नहीं, विशेष कुछ नहीं । हाँ, मन खराब होनेसे बीच बीचमें तबीयत कुछ सुस्तसी हो जाया करती है ।

सदा०—मन ही क्यों इतना खराब रहता है ?

देवे०—यही लड़की-लड़कोंपर स्नेहकी अधिकता और ममत्ताके कारण ।

सदा०—ओ, तुम सुशीलाके बारेमें चिन्ता करते हो ?

देवे०—ना, उसने व्याह नहीं किया सो अच्छा ही किया । और एक परिवारको—जाकर तोड़-फोड़कर मिट्टीमें नहीं मिला दिया । ये सब लड़कियाँ पाप हैं—जंजाल हैं—आफत हैं । सर्वनाश हैं । हम लोग दूध पिला-पिला कर काली नागिनें पालते हैं ।—ओः !—

सदा०—सचमुचमें क्या तुम्हारा यही मत है ?

देवे०—और नहीं तो क्या है !

सदा०—तुम ठीक उलटी बात कह रहे हो ।

देवे०—क्या करूँ, ठगकर सीखा है ।

सदा०—देवेन्द्र, मैं तुमपर भक्ति रखता हूँ; मगर तुम इतनी चंचल बुद्धि रखते हो ! इतने साधारण मामलेमें विचलित हो उठते हो !

देवे०—मैं अभी नहीं आ सकता—जा।

सदा०—ना देवेन्द्र, भीतर जाओ।

देवे०—मैं किसीका नौकर नहीं हूँ।

सदा०—सिविल सर्जनको बुलाऊँ?

देवे०—ना—ना—ना। कितनी दफे कहूँ—तुम अब अपने घर जाओ।

सदा०—अच्छा जाता हूँ! तुम जरा घरके भीतर हो आओ—औरतें घबरा रही होंगी। (प्रस्थान।)

देवे०—परेशान कर डाला! ओः, क्यों मैंने ब्याह किया था!

[विनोदिनीका प्रवेश।]

विनो०—बाबूजी!

देवे०—आता हूँ, चलो। मौत भी नहीं आती? (प्रस्थान।)

विनो०—तबीयत अच्छी न रहनेसे बाबूजीका मिजाज कुछ चिड़चिड़ा सा हो गया है। पहले तो इस तरह बात--बातमें नहीं खिसियाते थे।

चौथा दृश्य।



स्थान—देवेन्द्रका घर। **समय**—रात।

[आँधी पानीके साथ ओले गिरते हैं; बादल गरजता है। घरमें पलँगपर बीमार लड़की लेटी है। कामिनी पास बैठी हुई ऊँघ रही है। देवेन्द्र खड़े हुए हैं।]

देवे०—कैसी भयंकर रात है! मूसलधार पानी पड़ रहा है, साथ-ही-साथ ओलोंकी बौछारसे किवाड़े झनझना उठते हैं। दूरपर

बादल—जंजीरमें बँधे हुए बाघकी तरह—क्रोधके मारे गंभीर स्वरसे गरज रहे हैं । ऐसा अन्धकार जान पड़ता है, जैसे आकाशसे सृष्टि लुप्त हो गई है। है केवल यह मेरा टूटा–फूटा घर और हम कई एक अभागे आदमी । सचमुच ही मेरे नजदीक संसारमें और कोई नहीं है। जब यह आँधी थम जायगी, अन्धकार मिट जायगा—जब सूर्यदेवकी किरणोंसे फूल खिल उठेंगे, पक्षी चहक उठेंगे—जब वसन्तकी हवा धीरे धीरे हरियालीके ऊपर चलेगी, फूलोंकी महकसे कुंज भर जायँगे—तब भी मेरा कौन होगा ? संसार ?—वह तो एक बार भी फिरकर मेरी ओर नहीं देखता । और दादा ?—केवल सुनता हूँ कि हम दोनों भाई हैं और एक ही माके पेटसे पैदा हुए हैं । संसारमें केवल दो पुत्र थे; एक फकीर होकर चला गया, दूसरा शिक्षाके अभावसे उच्छृंखल होकर लुच्चा बन गया है । तीन लड़कियाँ हैं, उनमें एकका तो जीवन बेकार हो गया है—विधवा हो गई है, दूसरीके ब्याहका ही सुभीता नहीं लगता, तीसरी बीमार पड़ी है। स्त्री दिनभर कुलीकी तरह मेहनत करती है; इस समय नींदने उसे दया करके अपनी गोदमें आश्रय दिया है । यह बीमार लड़की मरना चाहती है । और, मैं यह सब देख रहा हूँ ।

कुमुदिनी—अम्मा ! अम्मा !

कामि०—(जागकर) क्या है बेटी ?

कुमुदि०—पानी—

देवे०—लाता हूँ (लानेके लिए जाना चाहता है ।)

कुमु०—ना—ओः—बाबू !

देवे०—ले बेटी, देता हूँ । (जल देता है ।)

कुमु०—मा—आग नहीं सहा जाता—अम्मा !

कामि०—क्या है बेटी, मैं तो तेरे पास ही हूँ।

कुमु०—दीदी !

देवे०—दीदी सो रही है। पुकारूँ ?

कुमु०—नहीं बाबू, जरूरत नहीं है। बाबू !—वे लौटकर आवें तो उनसे कहना—ओः !

देवे०—बड़ी यन्त्रणा हो रही है !

कुमु०—नहीं बाबू, अभी सब दुख-दर्द समाप्त हो जायगा।

कामि०—बेटी, यह क्या कहती हो—भगवान्—बड़ी विपत्ति है।

कुमु०—अम्मा ! (गलेसे लिपट जाती है।)

कामि०—मेरी बेटी ! (छातीसे लगा लेती है।)

कुमु०—अम्मा ! ओः—बाबू !

कामि०—(देवेन्द्रसे)डाक्टरको बुलाओ।

(कुमुदिनी फिर पलँगपर पड़ जाती है।)

कुमु०—बाबू ! बड़ा कष्ट हो रहा है।

कामि०—हाय हाय ! यह क्या ! बेटी, हाथ-पैर क्यों पटकती है ?—अजी डाक्टरको बुलाओ।

देवे०—डाक्टर ! सुनती नहीं हो, बाहर क्या हो रहा है ! इतनी रातको—ऐसी आँधी पानीकी रातको—डाक्टर कहाँ मिलेगा ? सौ रुपये देनेसे भी तो कोई डाक्टर नहीं आवेगा—और उतने रुपये देनेका भी तो सुभीता नहीं है।

कुमु०—डाक्टरकी अब कुछ जरूरत नहीं है—बाबू ! खिड़की खोल दो।

(देवेन्द्र खिड़की खोल देता है । ठंडी हवा आकर
दिया बुझा देती है । साथ ही कुमुदिनीके
भी प्राण निकल जाते हैं ।)

देवे०—(अन्धकारमें) बेटी कुमुदिनी !

कामिनी—मेरी बेटी—मेरा लाल—कुमुदिनी—

(लाशको छातीसे लगा लेती है ।)

देवे०—जोरसे पकड़ रक्खो—देखो, कहीं भाग न जाय । इस घोर अंधकारमें मौका पाकर दगा दे कर कहीं भाग न जाय ।

कामि०—हाय ! भाग ही गई ! (रोती है ।)

देवे०—छोड़ दिया ? पकड़कर रख नहीं सकी ! मूर्ख ! अच्छा तो चलो—इस अंधकारमें हम भी दौड़ लगावें ! देखें—कहाँ भाग गई । (पागलकी तरह प्रस्थान ।)

नेपथ्यमें—कुमुदिनी ! कुमुदिनी ! बेटी !



तीसरा अंक।

पहला दृश्य।

स्थान—देवेन्द्रका अन्तःपुर। समय—सन्ध्याकाल।

[घरमें देवेन्द्र अकेला टहल रहा है।]

देवे०—एक आफतसे छुटकारा नहीं मिला कि दूसरी सिरपर सवार हो गई ! जलमें ही जाकर जल रुकता है। जब गिरने लगा हूँ नीचे—तब कौन रोक सकता है? जितना ही गिरता हूँ, उतना ही जैसे देर नहीं सही जाती।—लो वह सुशीलाकी माँ आ रही है। आओ न; मैं अचल स्थिर हूँ। क्या करोगी, करो।

[कामिनीका प्रवेश।]

कामि०—अजी सुनो तो, आँखोंके सामने ही पुलिसके आदमी लड़केको पकड़ ले गये ?

देवे०—हाँ ले गये।

कामि०—तुमने कुछ नहीं कहा ?

देवे०—ना।

कामि०—चुपचाप खड़े देखा किये ?

देवे०—हाँ देखा किया—कैसा अद्भुत दृश्य था !

कामि०—तुमने रोका नहीं ?

देवे०—ना।

कामि०—क्यों ?

देवे०—इस डरसे कि कहीं पुलिसके आदमी लड़केको छोड़ न दें।

कामि०—इस डरसे ?

देवे०—और नहीं तो क्या !

कामि०—तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है।

देवे०—बहुत संभव है।

कामि०—नहीं, मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, तुम उसको बचाओ।

देवे०—किसे ?

कामि०—लड़केको।—क्या ! हँस रहे हो ?

देवे०—मजेमें हो तुम श्रीमतीजी ! कोई भी चिन्ता नहीं है ! संसारका हाल कुछ भी नहीं जानती हो।—भगवान् ! तुमने मुझे भी स्त्रीका जन्म क्यों नहीं दिया ?—ओः, यह तो सौ गर्भोंके बराबर यन्त्रणा भोग रहा हूँ।

कामि०—बच्चेका क्या होगा ?

देवे०—बच्चा जेल जायगा।—चोरीकी विद्या बड़े मजेकी विद्या है, अगर कोई पकड़ न ले; लेकिन पकड़ ही लिया—(दाँतोंसे ओठ चबाकर)—जाओ जेलमें,—सरकारने कैसा अच्छा कानून बनाया है !—खूब बनाया है !

कामि०—लड़केको जेल हो जायगी तो मैं नहीं जियूँगी।

देवे०—तो फिर मर जाओ। हाँ मर ही जाओ। एक लड़का संन्यासी हो गया—और एक लड़का था, वह जेल जा रहा है। एक लड़की अच्छी तरह दवा न होनेसे मर गई, एक लड़की तन्दुरुस्त सुपात्र लड़का न मिल सकनेसे राँड़ हो गई। और एक लड़की है सो वह क्वाँरी रहना चाहती है—तुम बाकी हो, सो गलेमें फाँसी

कैला०—ओः ! अब नहीं रहा जाता ! कहाँ तक देखूँ ? यह यन्त्रणा तो छाती फाड़े डालती है । यह कैसे देख सकता हूँ ? बेटी विनोदिनी ! बेटी सुशीला ! सोचती क्या हो ?—क्या सोचती हो ? तुम्हारा बाप—ओः !— (तेजीके साथ प्रस्थान ।)

[गहनोंका सन्दूक लेकर कामिनीका प्रवेश ।]

कामि०—विनोदिनी !

विनो०— क्या अम्मा ?

कामि०—ये गहने लेकर सदानन्द बाबूके पास जा तो बेटी ! जाकर कह कि ये गहने बेचकर रुपये ला दीजिए ।

विनो०—यह क्या अम्मा ?

कामि०—इन गहनोंके रहते मेरा लाल जेल नहीं जा सकता । क्या ! एकटक ताक रही है !—ले जा ।

विनो०—तुम कहती थीं कि ये गहने तुम्हें तुम्हारी माने दिये थे । जिन्दगी भर इन्हें अपनेसे जुदा न करनेकी बात भी तुम कई बार कह चुकी हो ।

कामि०—कह चुकी हूँ । तब लड़केपर यह आफत आनेका हाल नहीं मालूम था । यह नहीं सोचा था कि प्राणोंसे भी प्रिय बनकर, अँधेरे घरका हीरा होकर, शत्रु मेरे घरमें सेंध देगा । संदूकमें इन गहनोंके रहते मेरा बच्चा जेल जायगा, और मैं माँ होकर खड़ी देखती रहूँगी !—ले जा बेटी !

विनो०—बाबूजीसे पूछ लिया है ?

कामि०—ना—जरूरत नहीं है । उनका दिमाग खराब हो गया है ।

विनो०—मगर—

कामि०—इसमें कुछ अगर-मगर मत कर बेटी ! बड़ी भारी विपत्तिमें पड़कर ही मैं अपनी माँके दिये गहने—अपना हृदय, अपने शरीरका आधा खून—बेचे डालती हूँ । अपने बेटेके लिए—बेटी, मुँह न फेर; अपने बेटेके लिए देती हूँ, और किसीके लिए नहीं । ले जा बेटी ।

(विनोदिनी सिर झुकाये गहनेका संदूक लेकर जाती है ।)

कामि०—(घुटने टेककर, हाथ जोड़कर) मधुसूदन, इस विपत्तिसे उबारो ।

दूसरा दृश्य ।

स्थान—देवेन्द्रके सोनेका कमरा । **समय**—रात ।

[देवेन्द्र अकेले नींदकी हालतमें कमरेमें टहल रहे हैं ।]

देवे०—रुपये ! रुपये ! रुपये !—संसारमें और कुछ नहीं है । केवल रुपये चाहिए ! लड़का रुपये चाहता है, लड़की रुपये चाहती है, जोरू रुपये चाहती है, स्वजन रुपये चाहते हैं, चोर रुपये चाहता है, राजा रुपये चाहता है, फकीर रुपये चाहता है, खुशामदी लोग रुपये चाहते हैं । मनुष्य इन्हीं रुपयोंके लिए माता पृथ्वीका पेट फाड़ता है, अथाह सागरके भीतर गोते लगाता है—और अगर उससे हो सकता तो आकाशमें भी घूमकर देख आता कि चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र आदिको तोड़-फोड़कर गलाकर टकसालमें रुपये ढाले जा सकते हैं या नहीं ! वाह री दुनिया ! सारे मनुष्य संसारमें, इन्हीं रुपयोंकी चिन्तामें डूबे देख पड़ते हैं । लेकिन जब मनुष्य इन रुपयोंके समुद्रमें गोता लगाकर बाहर निकलेगा, तब एक रुपया भी उसके शरीरमें

जमा हुआ नहीं देख पड़ेगा। हे भोलानाथ! देखता हूँ, मेरे इन पाँच हजार रुपयोंपर सबकी नजर लगी हुई है।—सबकी इच्छा है कि चीलकी तरह झपट्टा मारकर इन्हें ले जायँ। ठहरो—मैं सब इन्तजाम किये देता हूँ। (लोहेका संदूक खोलता है।) ऐसी जगह छिपाकर रक्खूँगा कि कोई न निकाल सके।—कहाँ रक्खूँ? कल ही अदालतमें जाकर जमा कर आऊँ। बाप-दादेका घर था, बाप-दादेका लिया ऋण भी था। उसीके लिए आधा घर बेचा है। अपने लिए तो घर बेचा नहीं है।—कहाँ रक्खूँ? इस जगह रक्खूँ? ऊँहूँ—धरतीमें गाड़कर रक्खूँ? अच्छी बात है। (बाहर जाकर लोहेका साबर लेकर प्रवेश।) देखूँ—यह जगह ठीक है कि नहीं। (साबरसे जमीन खोदता है। फिर उसके शब्दसे चौंक पड़ता है।) यह क्या! (चारों ओर देखकर) ना—इसमें आवाज होगी। नहीं, यह ठीक नहीं है। (साबर रखकर) अच्छा, आलमारीमें रक्खूँगा। किसीको शक भी न होगा। लोहेका संदूक होनेपर भी आलमारीमें कौन पाँच हजार रुपये रक्खेगा? अच्छा, आलमारी खोलता हूँ। (चाबी लेकर आलमारीका खटका खोलता है।) इस जगह रक्खूँ? नहीं—इस जगह रक्खूँ।—इसके भीतर यह क्या है! भीतर यह क्या है! इसके भीतर यह चोर-घर है! वाह, यह तो बड़े मजेकी बात है! यहीं पर रक्खूँ—बस। (नोटोंका बंडल उसी चोर-घरके भीतर रखता है।) उसके बाद यह लो—(बन्द करता है।) उसके बाद यह लो—(आलमारीके पट बंद करता है।) उसके बाद यह लो (चारों ओर देखकर आलमारीका खटका बंद करता है।)—कोई आसपास नहीं है, किसीने नहीं देखा। अब किसकी मजाल है जो इन रुपयोंको निकाल सके! हाः हाः हाः— (फिर लेटकर सो जाता है।)

[विनोदिनीका प्रवेश।]

विनो०——बाबूजी अभी जैसे किसीसे बातें कर रहे थे। (सोते देखकर) ओः, नींदमें चलने-फिरनेका और बातें करनेका बाबूजीको अभ्यास सा होगया है। (प्रस्थान।)

तीसरा दृश्य।

स्थान—उपेन्द्रका घर। **समय**—सन्ध्याकाल।

[उपेन्द्र और उनके भक्त बैठे हैं।]

उपे०——भक्तो! मुझे जान पड़ता है, आहार करना एक बहुत बड़ा आध्यात्मिक कार्य है। और, मक्खन तो——स्वयं श्रीकृष्ण——आहा——वही देवकीनन्दन——

भक्तगण——आहा!

उपे०——पीताम्बरधर——मयूरपुच्छभूषण——वंशीधर गोपाल——

भक्त०——(गद्गदस्वरमें) आहा!

उपे०——वही मक्खनचोर भगवान् स्वयं यह उज्ज्वल कोमल——आहा!——मक्खन खाते थे। इसी लिए——(मक्खन खाता है।)

भक्त०——आहा!

उपे०——यह जो अंडेके आकारका लाल लाल सुंदर पदार्थ रसमें तैर रहा है, सो——आहा——जैसे कारण-जलमें सृष्टि उतरा रही है!——इसका नाम रसगुल्ला है। आर्य ऋषियोंने इसीका आकार

देखकर ही यह सिद्धान्त स्थिर किया था कि पृथ्वी गोलाकार है ।— इसीसे यह आत्मा परमात्माकी ओर चला जाय । (रसगुल्ले खाता है ।)

भक्त०—कैसी आध्यात्मिक व्याख्या है ! कैसा आध्यात्मिक वर्णन है !

उपे०—यह पीनेकी चीज—जिसे देहाती भाषामें सर्बत कहते हैं—कैसे अपूर्व रहस्यसे भरा हुआ है !—'सर्वभूतेषु श्रीकृष्णः'—आहा—सर्वभूत और सर्बत एक ही पदार्थ है—यह कैसा आध्यात्मिक व्यापार है !—बस, यह उसी भूमा परमेश्वरमें जाकर लीन हो जाय !—(शर्बत पीता है ।)

भक्त०—लीन हो जाय !

उपे०—उसके उपरान्त, यह जो धुआँ उगलनेवाला विचित्र यंत्र देखते हो—इसका नाम गुड़गुड़ी है । इसमें विष्णुका तेज है—ओः हे हरि ! हे गोविन्द ! हे नारायण ! हे मधुसूदन !—(हुक्का पीता है ।)

भक्त०—हरि भजो—हरि भजो ।

[नौकरका प्रवेश ।]

नौकर—बाबूजी, यज्ञेश्वर बाबू आये है ।

उपे०—यज्ञेश्वर बाबू !—ओ !—अच्छा भाइयो, तुम अब घरको जाओ । मै जरा मनको श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दोंमें लगाऊँगा । आहा ! वे ही गोपीमनोरञ्जन, वे ही जीवकी परमगति, वे ही श्रीहरि उद्धार करेंगे । उन्हींके चरणोंका ध्यान करूँगा ।—आहा !—

(भक्तगण 'आहा ! ओहो !' आदि भक्तिभावसूचक शब्द करते हुए जाते हैं।)

उपे०—ओह, जैसे दम घुट रहा था; जान बची !—अब देखूँ, यज्ञेश्वर क्यों आया है !

[यज्ञेश्वरका प्रवेश ।]

यज्ञे०—लो, उपेन्द्र बाबू तो यहाँ विराजमान हैं।—उपेन्द्र बाबू, तुमसे मुझे एक बात कहनी है।

उपे०—तुमसे मुझे भी कुछ कहना है यज्ञेश्वर!

यज्ञे०—तुमने विश्वासघातका काम किया है।

उपे०—मैंने?

यज्ञे०—हाँ तुमने। तुमने अपने पिताका ऋण छोटे भाईके माथे डाल दिया। कहा—वह घर बेचकर अदा कर देगा। उसका घर भी बिक गया, मगर ऋणका एक पैसा भी नहीं चुका।

उपे०—सो—इसमें मेरा दोष नहीं है।

यज्ञे०—तुम्हारा दोष नहीं है?—मैं तुम्हारे कान पकड़कर वह रकम वसूल कर लूँगा।

उपे०—करो—जाने रहो, मैं वकील हूँ।

यज्ञे०—और मैं महाजन हूँ। दोनों ही जने गरीबोंका खून चूसते हैं। यदि अन्तर है तो यही कि मैं वैष्णव नहीं हूँ!—मैं जरूर तुमसे ये रुपये वसूल करूँगा।

उपे०—कर लेना, तुम खुद 'भरपाये' का कागज लिख कर मुझे दे चुके हो; कर लेना वसूल।

यज्ञे०—तो फिर देखोगे?

उपे०—क्या?

यज्ञे०—मैं असल वसीयतनामेका गवाह हूँ—यह याद है?

उपे०—वह वसीयतनामा अब है कहाँ?

यज्ञे०—अभी है। उसी शीशमकी आलमारीमें है।

उपे०—वाह!

यज्ञे०—कोई नहीं। तुम समझते हो, वह वसीयतनामा अगर होता तो अबतक देवेन्द्रको दाग लग जाता। मगर यह बात नहीं है। उस आलमारीके भीतर एक चोर-घर है। इस बातको केवल मैं ही जानता हूँ— और कोई नहीं जानता। वह आलमारी अभीतक देवेन्द्रके पास है। मैं जाकर अभी देवेन्द्रसे कहता हूँ। रुपये वसूल होनेका यही सहज उपाय मेरे हाथमें है। उस वसीयतनामेके अनुसार बारह आने जायदाद देवेन्द्रकी है और चार आने जायदाद तुम्हारी है।

उपे०—यह क्या!

यज्ञे०—बोलो, रुपये दोगे कि नहीं?

उपे०—पर तुम जाली वसीयतनामेके भी गवाह हो।

यज्ञे०—मैं अस्वीकार कर दूँगा। तुमने जाल करके मेरे दस्तखत बना लिये हैं।

उपे०—कौन इसपर विश्वास करेगा?

यज्ञे०—जो बापके जाली दस्तखत बना सकता है, वह गवाहके जाली दस्तखत नहीं बना सकता?—बोलो, रुपये दोगे या नहीं?

उपे०—यज्ञेश्वर, तुम यह काम नहीं कर सकते। तुम मेरे मित्र हो।

यज्ञे०—एक आदमीका सर्वनाश करनेके लिए कुचक्र या षड्यन्त्र रचनेका नाम मित्रता नहीं है। दो साधु मित्र होते हैं—मगर दो हरामजादे मित्र नहीं हो सकते। उन दोनोंको दस वर्ष तक एक पिंजड़ेमें डाल रखनेसे भी वे मित्र नहीं हो सकते। पिंजड़ेसे बाहर निकलते ही वे वैसे ही हरामजादे हो जायँगे।

उपे०—यज्ञेश्वर !—(हाथ पकड़ता है ।)

यज्ञे०—औरतोंकी तरह रोना रहने दो । (हाथ छुड़ाकर) रुपये दोगे कि नहीं ?

उपे०—सुनते ही नहीं हो ।

यज्ञे०—दोगे कि नहीं ?—तुम तो वकील हो—एक जवाब दो—हाँ या नहीं ।

उपे०—एक बात सुन लो ।

यज्ञे०—मैं जो कहता हूँ, वही करता हूँ ।—दोगे ?—यही आखरी सवाल है ।

उपे०—दूँगा ।

यज्ञे०—अभी लाओ ।

उपे०—अभी ?

यज्ञे०—हाँ, इसी दम । मुझे तुम्हारा विश्वास नहीं है ।

उपे०—अभी मेरे पास रुपये नहीं हैं ।

यज्ञे०—अच्छी बात है । (जाना चाहता है ।)

उपे०—ठहरो, देता हूँ ।

यज्ञे०—दो ।

उपे०—देखो यज्ञेश्वर, आपसमें फैसला कर लो ।

यज्ञे०—फैसला ?

उपे०—हाँ फैसला ।

यज्ञे०—कैसा फैसला ?

उपे०—यही मान लो अगर—

यज्ञे०---(सहसा) हाँ फैसला कर लो। अगर उसके लिए राजी हो, तो मैं सूदसमेत असल छोड़ देनेको राजी हूँ। सुनो---

उपे०---काहेके लिए ?

यज्ञे०---ना, मैं जबानसे वह बात नहीं कह सकूँगा। उस प्रस्तावको सुनकर धरती काँप उठेगी---यह अमावसकी काली रातका अन्धकार जम जायगा---धर्म---अगर है तो वह---सूखकर सिकुड़ जायगा, मरकर सड़कर दुर्गन्ध देने लगेगा।

उपे०---सुनूँ तो, वह क्या प्रस्ताव है ?

यज्ञे०---समझे नहीं ? तुम भी पातकी हो, मैं भी पातकी हूँ। तो भी तुम्हारे आगे वह बात मेरी जबानपर नहीं आती। फिर भी नहीं समझे ?

उपे०---ना।

यज्ञे०---सुनो (कानमें कहता है)---क्या ! चौंक पड़े ?

उपे०---क्या ? अपनी सगी भतीजीको ?---(यज्ञेश्वरका गला पकड़कर) पाजी ! शैतान !

यज्ञे०---सावधान उपेन्द्र !

उपे०---(सहसा) ना--ना। छोड़े देता हूँ। याद नहीं रही---खयाल नहीं रहा। (छोड़ देता है।)

उपे०---मंजूर---वह कौन है ?

यज्ञे०---कोई भी नहीं है। यह क्या, काँप रहे हो ? आओ---बाहर चलें। (प्रस्थान।)

चौथा दृश्य ।

स्थान—देवेन्द्रके घरका अन्तःपुर । समय—संध्याकाल ।

[कामिनी और विनोदिनी ।]

कामि०—क्या हुआ ?

विनो०—सदानन्दबाबूने कहा कि अभी गहने बेचनेकी जरूरत नहीं है । गहने गिरवी रखकर ५०००) रुपये ला दिये हैं ।

कामि०—उन्होंने क्या कहा ? मेरा बच्चा बच तो जायगा ?

विनो०—वे उसके लिए भरसक कोशिश करेंगे; कुछ उठा नहीं रक्खेंगे ।

कामि०—भगवान् उनका भला करें । देखो बेटी, तुम्हारे बाबू इन रुपयोंके बारेमें कुछ न जानने पावें; नहीं तो वह महनामथ कर देंगे ।

विनो०—डरो नहीं अम्मा, वे कुछ नहीं जान सकेंगे ।

(प्रस्थान ।)

कामि०—भगवान् रक्षा करो । भगवान्—

[देवेन्द्रका प्रवेश ।]

देवे०—खानेको अब भी नहीं तैयार हुआ ?

कामि०—एलो—मैं भूल ही गई थी ।

देवे०—देखता हूँ, अब तुम सब मिलकर मुझे घरमें न रहने दोगे ।

कामि०—मैं अभी किये देती हूँ ।—क्यों, बच्चेकी क्या खबर है ?

देवे०—(रूखे स्वरमें) जाओ, परेशान न करो ।

(कामिनीका प्रस्थान ।)

देवे०—लड़का जेल गया—जाने दो। और क्या? अब पिता-का कर्ज चुकाकर, उसके बाद कौपीन बाँधकर, फकीर हो जाऊँगा। स्त्री और दो लड़कियाँ रह गईं—न होगा, वे भी भीख माँगकर खा लेंगी!—लड़का जेल गया, अच्छा ही हुआ—खानेको न देना पड़ेगा। बुरा क्या है! अच्छा है!

[सुशीलाका प्रवेश।]

देवे०—तुम यहाँ क्यों आई हो? जाओ।

सुशी०—बाबूजी, सदानन्द बाबू आये हैं। आपसे मुलाकात करना चाहते हैं।

देवे०—आः, इस सदानन्दने तो परेशान कर डाला।—कह दो, मुझे फुरसत नहीं है—तबीयत ठीक नहीं है।—ना, अच्छा, बुला ही लाओ।

(सुशीलाका प्रस्थान।)

देवे०—सबके मुँहसे यही एक बात सुन पड़ती है कि "आहा, देवेन्द्रका लड़का जेल गया!"—आहा! जैसे इस 'आहा' से मेरा कलेजा ठंडा हो गया।

[सदानन्दका प्रवेश।]

देवे०—क्या खबर है सदानन्द,—आज मेरी तबीयत अच्छी नहीं है।

सदा०—क्या हुआ भाई देवेन्द्र,—डाक्टरको बुलाऊँ?

देवे०—सारे चिकित्साशास्त्रभरमे इस रोगकी दवा नहीं है।

सदा०—सोच न करो देवेन्द्र, अपील करूँगा। महेन्द्र अभी छूट सकता है।

देवे०—ना, ना, अपील न करना। लड़का जेल गया तो अच्छा हुआ। अब उसे बैठे बैठे खानेको मैं नहीं दे सकता। और, एक

बोझ तो कम हुआ। इस स्त्रीको और दोनो लड़कियोंको भी तुम इसी तरह जेल भिजवा सकते हो? यह कर सको, तो बहुत अच्छा हो।

सदा०—यह तुम क्या कह रहे हो भाई?

देवे०—बैरिस्टर खड़ा करके तुमने इतने रुपये बेकार खर्च कर डाले। तुम्हारी भी बुद्धि खूब है! हाँ सुना है, तुमने इस मुकदमेमें पाँच हजार रुपये खर्च कर डाले हैं—क्यों?

सदा०—हाँ, इतनेहीके लगभग खर्च हुआ है।

देवे०—तुमने इतने रुपये कहाँसे पाये, यह पूछनेका मुझे खयाल ही नहीं रहा। मेरा दिमाग खराब हो गया था। अब ठीक है। बताओ, इतने रुपये कहाँसे खर्च किये?

सदा०—तुम्हें यह पूछनेसे क्या मतलब? हम लोगोंने किसी-तरह रुपयोंकी तदबीर कर ली थी।

देवे०—तो तुमने अपने पाससे रुपये खर्च किये हैं। याद रक्खो सदानन्द, अगर तुम मेरे लिए एक पैसा भी खर्च करोगे, या तुमने एक पैसा भी खर्च किया है, तो जीवनभर मैं तुमसे बात नहीं करूँगा। तुम मुझे अच्छी तरह पहचानते हो। मेरे पुरखोंमेंसे किसीने कभी किसीका दान नहीं लिया—मैं भी नहीं लूँगा।

सदा०—इतने घबराये क्यों जा रहे हो देवेन्द्र, मैं कसम खाकर कहता हूँ—मेरी एक कौड़ी भी खर्च नहीं हुई है।

देवे०—तो फिर ये रुपये कहाँसे आये?

सदा०—तुम्हारी स्त्रीने भेज दिये थे।

देवे०—मेरी स्त्रीने? उसने पाँच हजार रुपये कहाँसे पाये?

सदा०—यह तो मैं नहीं जानता। मेरा लड़का मेरे पास ये रुपये लाया था। उसीने कहा कि तुम्हारी स्त्रीने मुकद्दमेके खर्चके लिए ये रुपये भेजे हैं।

देवे०—तुमने नहीं पूछा कि मेरी स्त्रीने ये रुपये कहाँसे पाये?

सदा०—पूछा था। विनयने कहा, उन्होंने यह बतानेको मना कर दिया है।

देवे०—अच्छा, मैं उससे पूछ लूँगा। भला सदानन्द, एक बात और है। मैंने कर्ज़ेकी डिगरीके रुपये इकट्ठे कर लिये हैं। तुम जाकर अदालतमें जमा कर आओगे?—जा सकोगे?

सदा०—लाओ! आज ही दे आऊँ—मुझे बहुत फ़ुरसत है।

देवे०—मैं ही जमा कर आता, मगर मेरी तबीयत सुस्त है। जान पड़ता है, बुखार चढ़ा हुआ है। लेकिन मैं जब पिताका ऋण चुकानेका प्रबन्ध कर चुका हूँ, तब अब उसे एक दिन भी बाकी रखना नहीं चाहता। अपनी आखिरी जायदाद बेच कर मैंने ये रुपये जमा किये हैं।

सदा०—यह क्या देवेन्द्र, घर बेच डाला!—किसके हाथ बेच डाला?

देवे०—हाँ सदानन्द, घर बेच डाला।

सदा०—यह क्या? बेचनेके पहले एक दफा मुझसे कहा भी नहीं।

देवे०—तुमसे कहता तो तुम बेचने ही न देते।

सदा०—सो तो होता ही। यह तुमने क्या किया देवेन्द्र! पुरखोंकी देहली—बड़ी पवित्र चीज होती है।

देवे०—पुरखोंकी देहलीकी अपेक्षा पिताका ऋण मेरी दृष्टिमें अधिक पवित्र चीज है। (लोहेका सन्दूक खोलता है।)

सदा०—देवेन्द्र, तुम्हारा हृदय अत्यन्त महत् है। भगवान् जानें, तुम्हारे ही सिरपर ये विपत्तिके बादल क्यों घिरे हुए हैं।—लाओ।

देवे०—ऐं! नोटोंका बंडल कहाँ है?

सदा०—क्या! सन्दूकके भीतर नहीं है?

देवे०—कहाँ है!—जो सोचा था, वही बात है!

सदा०—रुपये थे या नोट?

देवे०—सब दस दस रुपयेके नोट थे।

सदा०—किसीको दिये तो नहीं?

देवे०—यह चोरी है। निश्चय चोरी है।

सदा०—लोहेका सन्दूक खोलकर कौन चुरा ले जायगा?

देवे०—और कौन चुरा ले जायगा?—किसका काम है, सो मैं जानता हूँ।

सदा०—किसका काम है?

देवे०—हूँ!

सदा०—चोरी नहीं की गई है। और कहीं रक्खे होंगे—याद करो। अब जाकर नहाओ-धोओ, फिर खयाल करके देखना। घबराओ नहीं। मैं तीसरे पहर आकर फिर खबर ले जाऊँगा। (प्रस्थान।)

देवे०—समझ गया गृहिणी! तुमने ५००० रुपये कहाँसे पाये—सो मालूम हो गया। मैं तो पहलेहीसे देख रहा था कि उन पाँच हजार रुपयोंपर घर भरकी नजर है।—तुमने लड़केको बचानेके

लिए मेरे पाँच हजार रुपये चुराये हैं। चोरी की है—चोरी की है।
—लो, वह आ भी गई।

(कामिनी का प्रवेश।)

कामि०—भोजन तैयार है। नहाओ।

देवे०—गृहिणी!

कामि०—क्या! इस तरह मेरी ओर क्यों देख रहे हो?

देवे०—अन्तमें चोरी!

कामि०—कैसी चोरी?

देवे०—तुम्हारी इतनी हिम्मत! मेरे लोहेके संदूकसे चोरी!

कामि०—किसने चोरी की?

देवे०—तुमने।

कामि०—मैंने?

देवे०—मेरा पहलेसे ही यह खयाल था कि उन पाँच हजार रुपयोंपर घर भरकी नजर है। जानती हो, वे पाँच हजार रुपये मेरे खूनसे सने और हृदयपिण्डसे बने हैं। पिताका दान—साधारण दान—यह घर था। उसीको बेच कर मैंने ये रुपये इकट्ठे किये थे। वे ही रुपये चुरा ले गईं!

कामि०—यह क्या कह रहे हो? मैं चोरी करूँगी?

देवे०—गृहिणी, मेरे पाँचों हजार रुपये फेर दो।

कामि०—तुम क्या कह रहे हो? तुम्हारा लोहेका सन्दूक खोल कर मैं तुम्हारे रुपये चुराऊँगी?

देवे०—उसके ऊपर मुखका भाव ऐसा दिखा रही हो, जैसे एकदम निर्दोष हो—कुछ जानती ही नहीं। ओः! यह स्त्रीजाति कैसी कपटी और झूठी होती है! ये स्त्रियाँ सब कुछ कर सकती हैं। मुझे

यही आश्चर्य माल्रूम पड़ रहा है कि अबतक तुमने मुझे विष क्यों नहीं खिला दिया ! क्यों नहीं खिलाया ? मौका तो खूब था !—लाओ, रुपये फेर दो ।

कामिनी—भला मैं रुपये लेकर क्या करती ?

देवे०—क्या करतीं ? जानती नहीं हो कि क्या किया ? तुमने लड़केके मुकद्दमेके खर्चके लिए वे रुपये सदानन्दके पास भेज दिये हैं । नहीं जानती हो ?—लाओ रुपये ।

कामि०—कैसे गजबकी बात है !—मान लो, अगर मैंने यही किया हो, तो क्या वह तुम्हारा लड़का नहीं है ?

देवे०—विश्वास क्या ?—पर इस चर्चाको जाने दो । उसे बचानेके लिए तुमने—मेरे वे रुपये खर्च कर डाले हैं, जिन्हें मैंने अपना सर्वस्व पुरखोंका घर बेचकर, अपनेको बेचकर और परकाल बेचकर जमा किया था ।—कहता हूँ—लाओ रुपये ।

कामि०—अच्छा तो सुनो । मैंने लड़केको बचानेके लिए जो रुपये सदानन्द बाबूके पास भेजे थे, वे रुपयें, अपनी माके दिये हुए गहने बेचकर पाये थे । उनमें एक पैसा भी तुम्हारा नहीं है । सच कहती हूँ । और, तुमने जो मुझे चोरी लगाई है उसे मैं भूल जाऊँगी; कारण तुमको यह होश नहीं है कि तुम क्या कह रहे हो ।

(रोती है ।)

देवे०—गृहिणी, आँसू बहाकर अब तुम मुझे नहीं बहला सकतीं । तुम्हारी जाति धूर्त होती है । तुम्हें जन्मसे ही रोने-धोनेका अभ्यास होता है । मैं नहीं मान सकता । लाओ रुपये—नहीं तो—

कामि०—नहीं तो ?

देवे०—नहीं तो और कुछ नहीं करूँगा, तुम्हें अपने घरसे निकाल दूँगा !—मैं घरमें चोरको नहीं रख सकता ।

कामि०——अच्छी बात है।

देवे०——अच्छा, तो अभी निकल जाओ।

कामि०——कहाँ जाऊँ?

देवे०——जहाँ जी चाहे——जाओ!

पाँचवाँ दृश्य।

स्थान——जेलखाना। समय——सवेरा।

(केदार और महेन्द्र।)

केदार——तुम जेलमें कैसे आये?

महे०——जाल करके।

केदार——अच्छा!——पर इतनी देर करके आये!

महे०——क्यों, पहले आनेसे क्या कुछ सुभीता होता?

केदार——बातचीत होती। मैं तो आज यहाँसे जा रहा हूँ!

महे०——ओ, शायद तुम्हारी मियाद पूरी होगई है!

केदार——हाँ! मगर उससे क्या होता है——चाहूँ तो मियाद बढ़वा सकता हूँ। मान लो, यज्ञेश्वरको मारा——छः महीनेकी कैद हुई; अब चाहूँ तो जेलरको मारकर साल डेढ़ साल और रह सकता हूँ। मगर नहीं, एकदफा यहाँसे निकलकर जानेकी बड़ी जरूरत है। उसके बाद फिर चला आऊँगा। कुछ डर नहीं है——घबराना नहीं।

महे०——तो फिर जाते ही क्यों हो?

केदार——एक खास जरूरत है। गदाधर——हरिपद——किशोरी; गदाधर——हरिपद——

महे०——यह क्या कह रहे हो ?

केदार०——रोज सबेरे उठकर रटता हूँ । लोग जैसे रामका नाम लेते हैं, मैं वैसे ही इन नामोंको जपता हूँ ।

महे०——क्यों ?

केदार०——तुम क्या समझोगे ? गदाधर——हरिपद——किशोरी । तुम्हारे पिता अच्छे हैं ?

महे०——ना, उन्हें सिरका रोग हो गया है ।

केदार०——हो गया ? होना ही चाहिए । Somnambulism (नींदमें उठकर चलने फिरनेकी आदत) से सिरका रोग——एक सीढ़ी ऊपर है । मैं उसकी दवा जानता हूँ ।

महे०——क्या दवा है ?

केदार——हें हें——गदाधर——हरिपद——किशोरी ।

महे०——जान पड़ता है, तुम्हें भी सिरके रोगने पकड़ लिया है ।

केदार——पकड़ लिया है ? गदाधर——हरिपद——ऐं——पकड़ लिया है——किशोरी, किशोरी, किशोरी । तुम बैठो, मैं अभी आता हूँ——कोई चिन्ता नहीं है भैया !——यह शरीर——जो सहाओ वही सह लेता है ! पुत्र-शोक भी सह लिया जाता है——जेलखाना तो उसके देखते एक मामूली बात है । यहाँ कुछ लज्जा मत करो—इसे अपना घर ही समझो भैया !

महे०——विचित्र आदमी है !

केदार——और भैया, यज्ञेश्वरके साथ सुशीलाका व्याह तो नहीं हुआ ?

महे०——नहीं ।

केदार०——अब जीमें जी आया । मुझे यही एक बड़ी चिन्ता थी । सुशीलाके व्याहके लिए अब कुछ चिन्ता नहीं है । अब राजपुत्रके

साथ उसका ब्याह करूँगा ।--गदाधर--हरिपद--किशोरी ।--कोई चिन्ता नहीं है--राजपुत्रके साथ करूँगा ।

महे०--कौनसे राजपुत्रके साथ ?

केदार०--सो अभी नहीं कहूँगा, गदाधर--हरिपद--किशोरी ;--भैया, कुछ चिन्ता न करो, यहाँ तुम्हारा शरीर अच्छा रहेगा । नित्य नियमित आहार करो, नियमित परिश्रम करो, गहरी नींद सोओ । दोनों वक्त आकर डाक्टर तुमको देख जायगा । मेरे ससुरने भी कभी मेरा ऐसा खयाल नहीं किया जैसा खयाल इस जेलखानेमें रक्खा जाता है । अगर पृथ्वीपर कहीं स्वर्ग है, तो यह जेलखाना ही वह स्वर्ग है ।

महे०--सो कैसे केदार बाबू ?

केदार--केदार काका कहते तुम्हारे गलेमें क्या शूलका दर्द होने लगा है !--मगर यह मैंने गलत कहा । कारण, शूलका दर्द पेटमें उठा करता है । खैर वह चाहे जो हो--अबसे अगर मुझे तुम केदार बाबू कहोगे, तो थप्पड़ मार बैठूँगा । काका कहा करो!

महे०--अच्छा वही सही । लेकिन काका, तुमने जेलखानेको स्वर्ग कैसे कहा ?

केदार०--स्वर्ग नहीं है !--तो फिर स्वर्ग कैसा होता है ? मैं यह जानना चाहता हूँ बेटा, कि फिर स्वर्ग कैसा होता है ? ठीक समय पर भोजन मिलता है--जो घरमें कभी नसीब नहीं हुआ । दोनों वक्त डाक्टर आता है ।--मुझे याद है, एक बार घरपर मुझे बड़े जोरसे बुखार आया था, वह तीन दिन तक भयंकर रूपसे चढ़ा रहा; हालत

खराब होने लगी, तब कहीं चौथे दिन डाक्टर आया । भाग्यसे नाड़ीका पता था, इसीसे जी उठा । नहीं तो तुम्हें आज काका कहकर न पुकारना पड़ता ।

महे०—और घानी घुमाना ?

केदार—उससे तन्दुरुस्ती ठीक रहती है । मैंने देखा है, बहुत लोग सबेरे उठकर टहलने या चक्कर लगाने जाते हैं । किस लिए जाते हैं ? इसी लिए न कि तन्दुरुस्ती अच्छी रहेगी । उसकी अपेक्षा अगर वे घड़ी भर घानीके चारों ओर घूमें तो शरीर भी अच्छा रहे और थोड़ासा तेल भी निकल आवे । कोई चिन्ता नहीं है भैया ! जेलखानेसे निकल कर देखोगे—तुम खूब मोटे ताजे गोल-मटोल हो गये हो !—

महे०—यह आप क्या कह रहे हैं केदार बाबू !—

केदार—चुप ! काका कहो—

महे०—हाँ हाँ, काका साहब—

केदार—मैं बहुत ठीक कह रहा हूँ । तुम खुद देख लेना । अक्षर अक्षर मिला लेना । अँगरेजोंका यह जेलखाना—स्वर्ग ही है ।

[जेलरका प्रवेश ।]

जेलर—केदार किसका नाम है ? बाहर निकलो ।

केदार—तो फिर मैं जाता हूँ भैया, कुछ चिन्ता मत करना ।—गदाधर—हरिपद—किशोरी ।

(केदार और जेलरका प्रस्थान ।)

[[illegible]]

[illegible]

[[illegible]]

केदार०—यह क्या ! बहूजी, इधर तुम अकेली कहाँ जा रही हो ?

कामि०—अपने भैया को देखने जाती हूँ। इधर ही जेलखाना है न ? मेरा भैया वहीं है, उसे देखने जा रही हूँ।

केदार—तुम अकेली औरत—अकेली वहाँ कैसे जाओगी ? और वहाँ के लोग जाने ही क्यों देंगे ? उससे मैं मिल चुका हूँ, वह वहाँ अच्छी तरह से है।

कामि०—(आग्रह के साथ) भेंट हुई थी ? तो मेरा भैया अच्छी तरह है ?

केदार—हाँ, खूब अच्छी तरह है। अब चलो बहूजी, तुमको घर पहुचा आऊं !

कामि०—मैं अब घर नहीं जाऊँगी।

केदार—क्यों ?—क्या ! चुप क्यों रह गईं ? अब घर न जाऊँगी—इसके क्या माने ?

कामिनी—ना, मैं न जाऊँगी।

केदार—तो फिर कहाँ जाओगी ?

कामि०—जिधर दिखाई पड़ेगा ।

केदार०—दिखाई तो सैकड़ों तरफ पड़ता है । सब तरफ नहीं जा सकोगी । बोलो, कहाँ जाओगी ?

कामि०—चूल्हेमें ।

केदार०—ऊँहू ! वह जगह सुभीतेकी नहीं है । उसकी अपेक्षा घर बहुत अच्छा है ।

कामि०—मैं आत्महत्या करूँगी । उसके पहले बच्चेको एक वार देखने आई हूँ ।

केदार—यह और कुछ नहीं—मानसिक विकार है । इसकी दवा मैं जानता हूँ—गदाधर—हरिपद—किशोरी ।

कामि०—यह क्या कह रहे हो ?

केदार—हूँ हूँ ! अभी नहीं बतलाऊँगा । घर चलो—मैं अभी जेलसे छूटकर आ रहा हूँ ।

कामि०—मैं नहीं जाऊँगी । आप जाइए ।

केदार०—'आप जाइए' के क्या माने ? ऐसा नहीं हो सकता ।

कामि०—मैं नहीं जाऊँगी ।

केदार—क्यों नहीं जाओगी ? मुझे नहीं बताओगी ? मैं तो तुम्हारा देवर हूँ । स्वामीके घर क्यों नहीं जाओगी ?

कामि०—उन्होंने मुझे घरसे निकाल दिया है । (रो देती है ।)

केदार—निकाल दिया है !—किसने ? दादाने ?—बहूजी !—सपना देखा है;—अर्थात् कुछ झगड़ा हुआ है । सो पति-पत्नीके बीच कभी कभी खटपट हो ही जाती है ।—खटपट होना अच्छा है; नहीं तो गिरिस्ती बहुत ही फीकी नूतनतारहित जान पड़ती है ।—

घर चलो—मेरी प्यारी भाभी—वह तो तुम्हारे स्वामीका—अर्थात् तुम्हारा ही—घर है!—

कामि०—मैं वहाँ नहीं जाऊँगी।

केदार—तो फिर कहाँ जाओगी, ठीक करके बताओ न!

कामि०—आपके घर जाऊँगी।

केदार०—(सोचकर) अच्छा जाओ। मेरी स्त्री भी इसी तरह बीच बीचमें—सो अच्छी बात है; गुस्सा कम हो जायगा तब यहीं लौट आओगी। ये स्त्रियाँ बड़ी ही विचित्र होती हैं—एकदम आग हो जाती हैं और थोड़ी ही देरमें एकदम वर्फ बन जाती हैं। अच्छा—तुम्हें पहुँचाने कौन जा रहा है?

कामि०—कोई नहीं।

केदार०—अच्छा, तो चलो, मैं ही तुमको वहाँ पहुँचा आऊँ। जब जी चाहे, मेरे घर चली आना। मेरे घरको अपना ही घर समझना।

(दोनोंका प्रस्थान।)

सातवाँ दृश्य।

स्थान—उपेन्द्रका अन्तःपुर। **समय**—संध्याकाल।

[उपेन्द्र और विनोदिनी।]

विनो०—चाचाजी, मुझे घर जाने दो। मेरी पालकी और कहार बुला दो। मैं घर जाऊँगी।

उपे०—घबरा क्यों रही हो विनोदिनी, तुम्हें कोई डर नहीं है।

विनो०—यह जो आप कह रहे हैं कि "कोई डर नहीं है," इसीसे अधिक डर माल्रूम पड़ता है। आपका स्वर भर्राया हुआ है,

आपकी दृष्टि संकुचित है, आपके रंग-ढंगमें चंचलता है, आपके मुँहपर स्याही फिरी हुई है। पहले तो ये बातें आपमें नहीं देख पड़ती थीं!

उपे०—(भर्राई हुई आवाजसे) मैं कहता हूँ—तुम्हें कोई डर नहीं है बेटी!

विनो०—यह क्या बात है! 'बेटी' कहनेमें आपकी जबान क्यों लटपटातीसी है!—मेरी पालकी और कहार बुला दो। बाबू—मारें, पीटें, निकाल दें, चाहे जो करें, फिर भी बापका घर—बापहीका घर है। पालकी और कहार बुला दो, नहीं तो मैं पैदल ही चली जाऊँगी।

उपे०—तुम खड़ी रहो, मैं पालकी-कहार बुलाये देता हूँ।

विनो०—ठहरो, मैं भी आपके साथ चलूँगी।

उपे०—क्यों?

विनो०—नहीं तो यहाँ किसके पास रहूँगी? आप चाहे जैसे हों—मेरे चाचा तो हैं! चाहे जिस तरहके हों—अपने आदमी तो हैं!

उपे०—केशव! मधुसूदन!

विनो०—ना ना, आप भगवानका नाम न लें। आप जब भगवानका नाम लेते हैं, तभी मैं समझती हूँ कि मन-ही-मन कोई शैतानी काम सोच रहे हैं। यह क्या! आप काँप रहे हैं?

उपे०—पालकी-कहार बुलाने आदमी भेजता हूँ—ठहरो।—

(जाना चाहता है।)

विनो०—मैं भी चलूँगी।

उपे०—हटो—(बाहर जा कर दरवाजा बन्द कर देता है।)

विनो०—यह क्या! बाहरसे दरवाजा क्यों बंद कर दिया? चाचाजी! दरवाजा खोलिए चाचाजी!

[दरवाजा खोलकर यज्ञेश्वरका प्रवेश।]

बड़े बड़े महल, ऊँचे ऊँचे सुन्दर इमारतें और मदरसे भी गड़कर उल्टे-गए हैं। जिसके द्वारा ट्रायका ध्वंस हुआ, जिसके कारण सुन्द-उपसुन्दकी आत्महत्या हुई, जिसके कारण विश्वामित्रका पतन हुआ, जिसके कारण महाभारतका संग्राम हुआ, जिसके कटाक्षसे एण्टोनीकी अधोगति हुई, जिसके मारे लंकाका वंश-लोप हो गया—वही [illegible] वस्तु कामिनी है! कैसा आश्चर्य है! मनुष्य इस बातको जान बूझकर भी जरा नहीं सोचता! औरत बेशक खूबसूरत है! इस कोमल मांस-पिण्डके लिए मैं पाँच हजार रुपये छोड़ देता हूँ, फिर भी कुछ नुकसान नहीं जान पड़ता। भरा हुआ पेट, बेशर्मी और जवान औरत, ये तीनों बातें अगर एक साथ होती हैं, तो फिर हृद-यसे नरकसे शैतानोंका दल उछल पड़ता है।—अब इसे होश आ रहा है—चारों ओर देख रही है। कैसी सुन्दरी है! वाह वाह!

विनो०—(उठकर) मैं कहाँ हूँ?—आप कौन हैं?—ओ! वही तो है!—यह तो सपना नहीं है!—कैसा भयंकर है!

यज्ञे०—सुन्दरी!

विनो०—नरक है! नरक है!—ओः!

यज्ञे०—सुन्दरी!—(हाथ पकड़ता है।)

विनो०—बचाओ—बचाओ। (दरवाजेपर धक्का मारती है।)

यज्ञे०—किसे पुकारती हो? घरमें कोई नहीं है। केवल तुम हो और मैं हूँ।

विनो०—कैसा भयानक है!

यज्ञे०—आओ सुन्दरी!—तुमपर मैं कुछ जोर-जुल्म नहीं करूँगा। मैं तुम्हें प्यार करता हूँ।

विनो०—हाँ, बाघ जैसे बकरीको प्यार करता है, साँप जैसे मेढ़कको प्यार करता है । मुझे प्यार न कीजिए—मुझसे घृणा कीजिए, घृणा कीजिए—दोहाई है आपकी ।

यज्ञे०—बाहर गाड़ी खड़ी है । चलो ।

विनो०—मुझे छोड़ दीजिए ।

यज्ञे०—तुम्हें सुखमें रक्खूँगा ।

विनो०—छोड़ दीजिए । (पैर पकड़ती है ।)

यज्ञे०—यह कैसे हो सकता है सुन्दरी ? मैं परदेस जा रहा हूँ, तुम्हें साथ ले जाऊँगा ।

विनो०—नहीं छोड़िएगा ?

यज्ञे०—ना; मेरी यह प्रतिज्ञा है ।

विनो०—कैसी महती प्रतिज्ञा है ! तो मेरी भी प्रतिज्ञा सुनिए । मैं जान दे दूँगी, मगर आन न दूँगी ।

यज्ञे०—यह क्या ! फिर बेसुरी तान छेड़ी ?—आओ ।

विनो०—अरे कोई है ?—बचाओ ।

यज्ञे०—कोई नहीं है ।—देखो, अब अधिक नखरे मत करो—आओ ।　　(गलेमें हाथ डाल देता है ।)

विनो०—हट जाओ—(धक्का देकर दूर गिरा देती है ।)

यज्ञे०—ओ !—तो फिर बिलकुल ही—(छुरा निकाल कर) देखती हो ?

विनो०—मारो—मार डालो ।

यज्ञे०—ना, यह नहीं करूँगा । यह करने थोड़े आया हूँ । (छुरा रख देता है ।) मेरे हाथ-पैरोंका बल ही काफी है ।—चलो । (मजबूत मुट्ठीसे हाथ पकड़ता है ।)

विनो०—कोई नहीं आया? मैंने सुना है और पढ़ा भी है कि विपत्तिके समय अगर कोई बचाने नहीं आता, तो देवता आ कर स्त्रीके धर्मकी रक्षा करते हैं। मुझे देवतोंने भी छोड़ दिया—मेरा कोई नहीं है।

यज्ञे०—क्यों—मैं तो हूँ।

विनो०—(सहसा) हाँ तुम हो, अब डर नहीं है, तुम हो। मैं तुम्हारी पशु-प्रवृत्तिके विरुद्ध—तुम्हारी ही महत्-प्रवृत्तिका आश्रय लेती हूँ। मेरी जान भले ले लो—मगर आन न लो। मैं तुम्हारे अत्याचारके विपक्षमें, तुम्हारे ही धर्म और तुम्हारे ही मनुष्यत्वके निकट आश्रयकी भीख माँगती हूँ। जान ले लो—आन रहने दो। अपने विरुद्ध तुम्हीं मेरी सहायता करो।

यज्ञे०—मैं?

विनो०—हाँ तुम। आज तुम्हारे ही महत्त्वके दुर्गमें मैंने आश्रय लिया। देखूँ, कैसे तुम मुझे वहाँसे हटाते हो। पराजित प्रताड़ित —खेदा हुआ आदमी अपने परम शत्रुके किलेमें जाकर आश्रय लेता है; जब वह दुर्ग भी टूट कर गिर पड़ता है, तब वह घोर जंगलमें जाकर छिपता है; पर जब वह वन भी उसकी रक्षा नहीं कर सकता और विजयी पुरुष जब उस अपने शत्रुको माताकी गोदसे खींच लाकर उसकी छातीमें प्रतिहिंसाकी छुरी भोंक देना चाहता है—तब, उस निर्बल मनुष्यका अन्तिम आश्रय—अन्तिम दुर्ग—विजयीका मनुष्यत्व ही होता है। घुटने टेक कर, आँखोंमें आँसू भरकर, ऊपर सिर उठाकर, हाथ जोड़कर जब वह बंदी विजयीसे क्षमाकी भीख माँगता है, तब उसके सामने खड़े हुए विजयीके हाथकी

मजबूत मुट्ठीसे वह छुरी आप-ही-आप गिर पड़ती है; उसकी दोनों लाल लाल आँखोंमें आँसू भर आते हैं, उसकी आँखोंकी जलती हुई नरककी आग बुझ जाती है; उसकी फिर क्या मजाल, जो वह कैदीका बाल भी बाँका कर सके। उसी दुर्गका (बैठकर हाथ जोड़कर) मैं भी आश्रय लेती हूँ। लोहेके दुर्गसे भी दृढ, तीर्थसे भी पवित्र, मनुष्यलोकका स्वर्ग यह जो तुम्हारे मनुष्यत्वका दुर्ग है, उसका— तुम्हारे मानव-हृदयका—मैं आश्रय लेती हूँ। अब तुम्हारी जो इच्छा हो, सो करो।

यज्ञे०—ना ना—तुम्हें कोई डर नहीं है बेटी! मैं चाहे जितना नीच होऊँ, मगर मनुष्य ही तो हूँ। तुम्हारे विचार इतने ऊँचे हैं? आँखोंके आगे धुँधला देख पड़ता है। बेटी, मुझे अपने चरणोंकी रज दो। क्षमा करो बेटी!

(पर्दा गिरता है।)



चौथा अंक।

पहला दृश्य।

स्थान—सदानन्दका घर। समय—प्रातःकाल।

[सदानन्द और विनय।]

सदा०—घरसे निकाल दिया?

विनय०—हाँ बाबूजी!

सदा०—अपनी स्त्रीको चोर कहकर! Somnambulism (नींदमें उठकर चलने-फिरनेकी आदत)से insanity (पागलपना) और एक सीढ़ी! सुशीला भी चली गई?

विनय०—हाँ बाबूजी, उसकी माता उससे कहकर नहीं गई। सुशीलाको जब यह हाल मालूम हुआ कि उसके बापने उसकी माको घरसे निकाल दिया है, तब गुस्सेके मारे उसका मुँह लाल हो उठा। उसके बाद ही उसने अपने बापसे कहा "मैं भी जाती हूँ बाबूजी!"

सदा०—देवेन्द्रने क्या कहा?

विनय०—कुछ बोले नहीं।

सदा०—यह सुशीला भी विचित्र बालिका है! इतनी अपने मनकी है! यह सब अँगरेजी-शिक्षाका फल है।

विनय०—पढ़ी लिखी होनेहीसे क्या स्त्री अपने मनकी हो जाती है?

सदा०—देख तो यही रहा हूँ।

विनय०—विलायतकी लेडियाँ तो—

सदा०—विलायतकी बात न कहो विनय, वे पाँच सौ वरससे शिक्षा पाती आ रही हैं—शिक्षा ही जैसे उनकी स्वाभाविक अवस्था हो गई है । सभी देखती हैं कि उनकी और सब बहनें शिक्षिता हैं । वहाँ किसीके गर्व करनेका कोई विशेष कारण नहीं है । इसीसे वे उच्चशिक्षाप्राप्त पढ़ी-लिखी होनेपर भी नम्र होती हैं । यदि भारतमें बी०ए० ही पास कर लिया तो लड़कियाँ धरतीपर पैर नहीं रखतीं ।

विनय०—आप क्या सुशीलाकी निन्दा कर रहे हैं ?

सदा०—थोड़ीसी तो जरूर कर रहा हूँ । बेटा, बड़े बूढ़ोंपर भक्ति रखना, एक स्वतःसिद्ध गुण है । जो लड़की मा-बापकी बात नहीं सुनती, उसका भविष्य शुभ नहीं ।

विनय०—हमारे देशमें भी क्या, ऐसीं, बापका कहा न माननेवालीं लड़कियाँ नहीं पैदा हुई हैं ?

सदा०—कौन हुई हैं ?

विनय०—सतीशिरोमणि सावित्रीको ही ले लीजिए । आज भी घर घर हिन्दू स्त्रियाँ उनकी पूजा करतीं और व्रत रखती हैं ।

सदा०—सावित्रीको भी अपने उस हठका फल भोगना पड़ा था । साल भरके बाद ही वे विधवा हो गई थीं । मगर उनमें चरित्र-बल था, इसीसे वे उस विपत्तिके सिरपर पैर रखती चली गईं । आजकलकी लड़कियोंने सावित्रीका हठ—कहा न मानना—भर तो ले लिया है—मगर वह चरित्र-बल नहीं पाया ।

विनय०—आपके पास इसका कुछ प्रमाण है ?

सदा०—तुम सुशीलाके बारेमें क्या समझते हो ?

विनय०—मैं समझता हूँ कि सुशीलामें वह चरित्र-बल है।

सदा०—(हँसकर) देखा जायगा। उसकी माँ कहाँ गई—कुछ जानते हो?

विनय०—कोई भी नहीं जानता, कहाँ गई है।

सदा०—कुछ ठीक समझमें नहीं आता। अब देवेन्द्र मुझसे किसी बारेमें सलाह भी नहीं पूछते। मुझे जैसे डर लगता है, शायद मुझे देखकर वह खीझ उठेंगे—तो भी एक दफा जाऊँ।

दूसरा दृश्य।

स्थान—रास्ता। **समय**—जाड़ोंका सबेरा।

[हरि, विनोद, शंकर, और नवीन गीत गाते हैं।]

करुणासिन्धु गोविन्द भजें, अब पक्के हिंदू हुए अहो।
दिन-दोपहर डकैती करते, प्रेमसुधारस डूब रहो॥
मुर्गी खाते नहीं, न मिलती, मगर मुफ्त ही मिले अगर।
तुम तो जानो, हैं उदार, फिर अरुचि न होगी यों छिपकर॥
हिन्दू-धर्मशास्त्र हम सीखें, लालाके मुंशीके पास।
'मुनीऋषी' मिलकर मुंशीकी पदवीका है हुआ विकास॥
जीवनका सारांश समझते चोटी, माला, तिलक खड़ा।
इनसे देखो निकला करता सभी जगहपर काम बड़ा॥
आहा! कैसी सुंदर चोटी, छोटी हो या हो मोटी।
आर्योंने कल खूब बनाई, इससे मिल जाती रोटी॥
बढ़ती आपीआप, पापहर, चतुर्वर्ग-फल देती है।
आहा! कैसी कम्र नम्र है, पीछे झोंके लेती है॥

जो खाओ सब हजम एकदम, जहाँ हाथ भरकी खोली ।
वाह वाह कैसी सुंदर है विषम हाजमेकी गोली ॥
निर्भय हो भिक्षाकी झोली रखकर कंधेपर बंदा ।
नाम धर्मका लेकर सबसे तहसीला करता चंदा ॥
ऐसे बहुत गधे हैं जगमें, जो मुखसे सुनकर हरिनाम ।
थैली खोल हाथमें रुपये गिन देते, फिर करें प्रणाम ॥
फिर क्यों गड़बड़ व्यर्थ करो यह, बोलो बोलो हरि बोलो ।
भव-भावना नहीं रहनेकी, जल्दी इस मतमें हो लो ॥
देखोजी जगदीशकृपासे सभी लोग खाते भरपेट ।
फिर क्यों हम ही नहीं खायँगे, खाली रक्खेंगे क्यों टेंट ?

हरि—अजी हमारे महाप्रभुका अब पता ही नहीं लगता !

विनोद—पता नहीं लगता ! मामला क्या है ?

शंकर—प्रभुकी अवस्था कुछ विषम जान पड़ती है ।

नवीन—हे प्रभु, तुम भक्तोंको छोड़कर कहाँ गये ?

हरि—आहा ! नवीनकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह रही है !

नवीन—प्रभुने मुझसे एक नौकरी लगा देनेके लिए कहा था जी !—हाय प्रभू , तुम कहाँ गये !

हरि—आहा ! बेचारा—

विनोद—एकदम हताश न होना नवीन !

नवीन—ना, अबकी प्रभूको कहीं एक दफा राहमें पा भर जाऊँ, तो बताऊँ ।

शंकर—क्यों, क्या करोगे ?

नवीन—दो लातें जमा दूँगा ।

हरि—क्योंजी—यह क्यों ?

नवीन—इतनी खुशामद की—सब बेकार गई !

विनोद—आहा ! घबराते क्यों हो ?—प्रभु जरूर ही भक्तका मनोरथ पूरा करेंगे।

शंकर—हाँ—प्रभुकी लीला कौन समझ सकता है !

[हँसते हुए केदारका प्रवेश।]

केदार—हाः, हाः, हाः।

विनोद—क्यों केदार बाबू, हँस क्यों रहे हो ?

केदार—चुप रहो !—मुझे हँसने दो। हाः, हाः, हाः।

शंकर—हुआ क्या केदार बाबू !

केदार—बाबा ! रोको मत—कहता हूँ !—रास्ता सरकारी है। हँसने दो। हिः, हिः, हिः।

नवीन—मगर इस तरह—

केदार—चुप रहो—छिपकलीकी दुम—गुबरीलेके बच्चे—खटमलके अंडे !—भैया, क्यों शौकसे आकर खालिस गालियाँ खा रहे हो ? मैने निश्चय कर लिया है कि गालियाँ न दूँगा। लेकिन तुम लोगोंको देखकर, गाली दिये बिना रहा नहीं जाता।

नवीन—लेकिन केदार बाबू, हम लोगोंने अपना मत पलट दिया है।

केदार—पलट दिया क्या ! तुम्हारा—और मत—फिर उसका पलट जाना !—जाओ, कहता हूँ—दिक मत करो।—हाः, हाः, हाः ! अब जेल भेजता हूँ। बेटाजी जेलको चले। अरे धिनता धिना, त्रेकेट तिना, ओरे धिनिता धिना, तिरिकिटि तिना—(नाचता है।)

विनोद—यह क्या केदार बाबू, नाचने लगे !

केदार—ओरे धिनता धिना—और त्रेकेट तिना। बेटाजी अब जेलको चले—ओरे—

शंकर—कौन जेलको चला ?

केदार—और कौन !—वही साला उदबिलाव, पीपल परका भूत, नराधम—वही !—फिर गालियाँ मुँहसे निकल गईं ।—केदार ! भले मानस बनो । गालियाँ मत दो । भले आदमियोंकी भाषामें बातचीत करो ।—भाइयो, जेलको चले श्रील श्रीयुक्त श्रीउपेन्द्रनाथ महाशय—जेलको जा रहे हैं—समझे ?

नवीन—जेलको !

केदार—हाँ, हाँ, जेलको—जेलको ! गारदमें—कारागारमें । उनके जानेसे शायद उस जगहका भी माहात्म्य बढ़ जाय । साला—हाः, हाः, हाः—

नवीन—क्या ! क्या ! क्या !

केदार—ना, अभी नहीं कहूँगा !—लेकिन जेल जानेके पहले सालेको अपने हाथसे दो थप्पड़ नहीं मार सका—सिर्फ यही पछतावा हो रहा है । ओः ! बड़ा ही दुःख—अत्यन्त पछतावा हो रहा है । बड़ा ही कष्ट पा रहा हूँ । लेकिन इधर बड़ा मजा होगा !—हाः, हाः, हाः—

नवीन—क्या मजा ?

केदार—ओः !—कही डालूँ,—लेकिन कहनेको तो मना कर दिया है !

विनोद—किसने ?

केदार—कही डालूँ—ना, नहीं कहूँगा ।—अच्छा सुनो—अबकी हाथमें प्रमाण आ गया है—पूरा सुबूत मिल गया है । ए लो, जरा और होता तो कही डाला था—और क्या ।

शंकर—अगर कही डालेंगे तो क्या होगा ?

केदार—यह भी तो ठीक है; कही डालूँ तो क्या है?—अबकी बेटाजी मजा पावेंगे। अन्तको साला यज्ञेश्वर—यह लो! जान पड़ता है, कही डाला!—ना, नहीं कहूँगा।—कभी नहीं कहूँगा।

शंकर—क्यों?

केदार—लेकिन बात छिपा रखना भी दूभर हो रहा है।

विनोद—कही डालिए।

केदार—ओः! बड़ा मजा होगा! हाः, हाः, हाः—यज्ञेश्वर! ओः! कैसा मजा है—आलमारीके भीतर!—ओः! होः, होः, होः—ओ बापरे! कैसा मजा होगा!

नवीन—सचमुच मजा होगा—क्यों?

केदार—कही डालूँ। अरे बाबारे! बात जैसे पेटसे निकली ही पड़ती है—अब रोके नहीं रहती! अरे बाबारे! पेट फटा! मरा!—कैसा मजा होगा!

सब—क्या—क्या—क्या होगा?

केदार—ओ—हुः, हुः, हुः! छिः, छिः, छी!—यह तो बड़ी मुश्किल हुई। जानते हो—बात क्या है? गवाह-साखी सब मौजूद हैं, आलमारीके भीतर—हाः, हाः, हाः,—होः, होः, होः—ओ बाबारे! अब नहीं रोके रुकती!

हरि—अजी, मैं पूछता हूँ, मामला क्या है?

केदार—कही डालूँ? बात यह है,—मगर मना जो कर दिया है जी!

शंकर—कर दिया होगा।

केदार—अबकी बेटाजी जेलकी सैर करने चले—एलो, कहीं डाला था—और क्या!

हरि—कही डालिए न !

केदार—ना, भाग जाऊँ; नहीं तो निश्चय कह डालूँगा !—कह डालूँ—अबकी बेटाजी—ओ बाबा ! (भाग खड़ा होता है।)

नवीन—पागल हो गया है क्या ?

हरि—नहीं जी, आदमी अच्छा है।

विनोद—जेल हो आया है न।

शंकर—पागल नहीं होगा ? भैया !

नवीन—लेकिन प्रभू—

हरि—दुत तेरे प्रभूकी—अब नहीं अच्छा लगता—खिसक चलो।

विनोद—दो हाथ जमाये बिना ?

शंकर—सो तो अच्छा नहीं—दो हाथ जमाये बिना खिसक चलना अच्छा नहीं मालूम पड़ता।

हरि—तो फिर वही किया जाय। चलो—चलो।

(सबका प्रस्थान।)

तीसरा दृश्य।

स्थान—खेवा घाट। **समय**—संध्याकाल।

[सुशीला और विनोदिनी।]

विनो०—घर छोड़कर चली आई ! तुमने यह किया क्या !

सुशी०—मेरे घर नहीं है, मैं निराश्रय हूँ।

विनो०—कहाँ जाओगी ?

सुशी०—सो कुछ नहीं जानती।

विनो०—लौट चलो।

सुशी०—कहाँ?

विनो०—पिताके घर चलो।

सुशी०—वहाँ मेरे लिए जगह नहीं है।

विनो०—क्यों? वे पिता हैं।

सुशी०—उन्होंने मेरी माको मार कर निकाल दिया है। उनके घरमें मैं—उसी माकी बेटी होकर—जाऊँगी? अथवा इसमें केवल उन्हींका क्या दोष है? बहुत पुराने वैदिक कालसे—मान्धाताके समयसे ही, पीढ़ी दर पीढ़ीके हिसाबसे, पुरुषोंके हाथसे स्त्रीजातिका अपमान होता चला आ रहा है। पिताको ही क्यों दोष दूँ?

विनो०—यह क्या कह रही हो बहन? वे ही तो हमें खाने-पहननेको देते हैं।

सुशी०—यह मर्दोंका बड़ा भारी अनुग्रह है! दो रोटी खानेको देते हैं—इसीसे इतना अहंकार है! इस पुरुषजातिके द्वारपर दो मुट्ठी अन्नके लिए फकीर बन कर—नारीका रहना—लज्जा भी नहीं आती!

विनो०—यह तुम्हारा क्या खयाल है बहन?—छी! चलो, घर लौट चलो। तुम्हें ढूँढ़नेके लिए चारों ओर आदमी दौड़ रहे हैं। देखो, मैं तक तुम्हारे पीछे दौड़ी आई हूँ।

सुशी०—क्यों दौड़ी आई?

विनो०—तुम्हें समझाने। विनयसे खबर मिली कि तुम यहाँ हो; इसीसे विनयको साथ लेकर घरसे यहाँ दौड़ी आई हूँ। मैं तुम्हारी बड़ी बहन हूँ—मेरी बात सुनो, घर लौट चलो। और-तकी जातिका इतना उद्धत होना नहीं सोहता—स्त्री कमजोर है, स्त्री अज्ञान है—

सुशी०—इसीसे मर्द उसे लातें मारेगा !—इतनी मजाल ! मैं दिखाती हूँ कि औरत भी मनुष्य है । दो वक्त दो मुट्ठी अन्नके लिए मोहताज होकर—मर्दके दरवाजेपर पड़े रहनेकी कोई जरूरत नहीं है ।

विनो०—तुम बचपनमें तो ऐसी नहीं थीं । पिताका दर्जा बहुत बड़ा है । मैंने सुना है, शास्त्रमें लिखा है कि पिताके प्रसन्न होनेपर सब देवता प्रसन्न होते हैं । पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्वदेवताः ।

सुशी०—मैं शास्त्रके वचन नहीं मानती—तुमसे सौ दफे कह चुकी हूँ । मैं पितापर भक्ति रखती हूँ—यह प्रवृत्ति मेरी स्वाभाविक है । लेकिन अगर वे भी कन्याको लात मारकर निकाल दें—कन्याकी माको मारें—तो कन्याके भी कुछ आत्मसम्मान है, मनुष्यत्व है ।

विनो०—ये सब साहबी ढंग हैं । पिता चाहे जो करें, वे पिता हैं—श्रद्धाके पात्र हैं ।

सुशी०—मुझे उनपर अश्रद्धा नहीं है । उन्होंने मेरे लात मारी, मैंने चुपचाप सह लिया । लेकिन मैं माकी हत्याको नहीं क्षमा करूँगी । मैं उनकी जानकी आफत होकर, अभिशाप बनकर—उनके गलेकी फाँसी बनकर—उनके घरमें नहीं रहना चाहती ।

विनो०—उनके घरमें रहनेकी जरूरत भी नहीं है । विनयकुमारके साथ व्याह कर लो ।

सुशी०—ना ।

विनो०—क्यों ?

सुशी०—मैं तुमसे बहस नहीं करना चाहती ।

विनो०—व्याह नहीं करोगी ?

सुशी०—ना ।

विनो०—क्या करोगी फिर ?

सुशी०—[illegible] पालूँगी !

विनो०—पाल सकोगी ?

सुशी०—क्यों न पाल सकूँगी ? तुम पाल सकती हो—मुझसे नहीं पल सकेगा ?

विनो०—लेकिन समाज—

सुशी०—समाज खूनी जानवर है—उसका विधान मैं नहीं मानती ।

विनो०—मानो या न मानो, ब्याह करो या मत करो, पर घर लौट चलो ।

सुशी०—ना । दीदी, मुझे तुम अच्छी तरह जानती हो । मैं प्रत्येक काम अपनी प्रवृत्ति, इच्छा और धारणाके अनुसार करती हूँ, किसीकी नहीं मानती ।

विनो०—घरको नहीं लौटोगी ?

सुशी०—ना । जिस घरमें माके लिए जगह नहीं है, वहाँ उसकी बेटीके लिए भी जगह नहीं है । तुम लौट जाओ—चार रोटियाँ खाओ और सुखसे जीवन धारण करो—मुझसे यह नहीं हो सकता ।

विनो०—मैं और क्या कर सकती हूँ बहन, विनय समझाता तो शायद—(सुशीला व्यंग्यकी हँसी हँसती है ।)—सो विनय तुमसे एक वार मिलने तकको राजी नहीं है ।—वह मुझे यहाँ छोड़कर आप अकेला नदीके किनारे टहलने चला गया । तुमने अपने रूखे व्यवहारसे उसे भी इतना नाराज कर रक्खा है ।

सुशी०—सब अपराध मेरा ही तो है !—कहे जाओ ।

विनो०—तुम घर लौटकर नहीं जाओगी ?

सुशी०—ना ।

विनो०—तो कहाँ जाओगी ?

सुशी०—चूल्हेमें—

विनो०—सो मुझे भी बतानेमें क्या तुम्हें कुछ आपत्ति है ? (गद्गद स्वरमें) सुशीला, बहन, तुम उत्तेजित हो रही हो, नहीं तो मेरे साथ तुम ऐसा कठोर व्यवहार कभी न कर सकतीं । जिन्होंने, शायद आत्महत्या कर ली है, वे मेरी भी माता थीं;—लेकिन बहन, बाबूजीका दिमाग खराब हो गया है । दूसरे, सहनेके लिए ही स्त्रीका जन्म है । यह ईश्वरका विधान है—इसे सिर झुकाकर स्वीकार करो ।

सुशी०—स्वीकार करती, लेकिन ईश्वरने यदि नारीको दुर्बल बनाया है, तो उसीने पुरुषके हृदयमें दुर्बलके लिए दया और सहानुभूति भी पैदा कर दी है । ईश्वरने मनुष्यको पशुओंकी तरह केवल हाथ-पैर ही नहीं दिये—उसे विवेक भी दिया है—मनुष्यत्व भी दिया है । नारी-जातिको दुर्बल पाकर जो जाति उसे केवल अपने विलासकी—सुपासकी—जरूरत रफा करनेकी चीज भर समझती है—या उसे अपनी जातिके सिरकी एक आफत समझती है—उस जातिका सिर सदा नीचा रहेगा ।

विनो०—लेकिन—

सुशी०—जाओ दीदी, मेरे लिए कुछ चिन्ता मत करो । घर लौट जाओ—मैं अपनी रक्षा आप कर सकती हूँ । यह देखो—(पिस्तौल दिखाती है; देखकर विनोदिनी काँप उठती है ।) जाओ बहन; बाबूजीसे कहना, मैं उनकी अबाध्य लड़की हूँ । मुझे वे क्षमा करें । लेकिन जब मुझे बाबाने अँगरेजीकी शिक्षा दी, मिल्टन और शेलीके ग्रन्थ पढ़ाये,—तब उससे और तरहके फलकी प्रत्याशा करना ही उनका भ्रम है ।

विनो०—तो फिर जाती हूँ; लेकिन मुझे यह बहुत ही खराब—बड़ा ही बेढंगा जान पड़ता है।—क्या करूँ?

(चिन्तित भावसे प्रस्थान।)

सुशी०—घर लौट कर नहीं जाऊँगी—मेरा प्रण है। चाहे जो हो, पुरुषकी प्रभुता नहीं स्वीकार करूँगी। (प्रस्थान।)

[डाकुओंका प्रवेश।]

१ डाकू—अब रोजगार नहीं चलता।

२ डाकू—देखते हैं, इसे छोड़ देना पड़ेगा।

३ डाकू—पहले निर्भय होकर, खबर देखर, डकैती की जाती थी, कोई विघ्न या रुकावट नहीं होती थी; मगर अब—

४ डाकू—अब दाहने-बायें, इधर-उधर पुलिस लगी रहती है; रोजगार कैसे चले?

सरदार—इस रोजगारको छोड़ दो।

२ डाकू—सिरके ऊपर तलवार झूलती है और पीछे फाँसी तैयार रहती है—फँसने भरकी देर है। ऐसेमें कहीं डकैतीका रोजगार चल सकता है?

३ डाकू—जाति गई—मगर पेट नहीं भरा।

१ डाकू—एक महीनेसे शहरमें घूम फिर रहे हैं, मगर कुछ नहीं कर सकते। रोजगार मिट्टी हो गया है।

सरदार—छोड़ दो फिर।

१ डाकू—छोड़ दें तो फिर क्या करें?

सरदार—खेती।

३ डाकू—अन्तको खेती! सरदार, तुम कहते क्या हो?

२ डाकू—डकैतीका ऐसा अच्छा पेशा छोड़कर—अब हम लोग गुंडोंका काम करते हैं—यही हद दर्जेका अपमान है; उसपर अब हल जोतें ?

सरदार—न जोतोगे तो पुलिस बहुत जल्द तुम्हें जोत डालेगी, कोई चिंता नहीं है ।

१ डाकू—(नेपथ्यकी ओर देखकर) वह एक औरत जा रही है—क्यों ?

२ डाकू—हाँ; किसी भले घरकी जान पड़ती है ।

३ डाकू—मगर अकेली है ।

४ डाकू—गहने भी पहने है ।

सब—सरदार, लूट लें ?

सरदार—नहीं, मैं भागा जाता हूँ ।

१ डाकू—भाग जाओगे क्या ? औरतको देखकर भागोगे ?

सरदार—क्या जानें भाई, वह मुँह देखकर—स्त्रीको देखकर—मेरे हाथसे हथियार गिर पड़ता है । मैं भागता हूँ ।

२ डाकू—तुम्हारे बिना कहीं काम चलता है ?

सरदार—खूब चलता है ।

३ डाकू—आओ सरदार, शिकार आया हुआ है—चलो ।

सरदार—ना, औरतको लूटने मैं न जाऊँगा ।

४ डाकू—चलो आओ ।　　(सरदारका हाथ पकड़ता है ।)

सरदार—अच्छा चलो, मगर मैं आँखें बंद किये रहूँगा, देखूँगा नहीं । कानोंमें उँगली दे लूँगा, उसका शब्द नहीं सुनूँगा । औरतके बदनमें हाथ नहीं लगा सकूँगा; वह काम तुम लोगोंको करना पड़ेगा ।

४ डाकू—अच्छी बात है । तुम औरतोंसे भी गये गुजरे हो !

सरदार—क्या जानें भाई, बीस-पचीस जवानोंका खून कर चुका हूँ—उनकी आँतें पाँतें ढेर कर दी हैं—पास खड़े खड़े उनका तड़पना देखा है—कान लगाकर उनका कराहना सुना है। लेकिन औरतोंके शरीरपर—भगवानने लोहेसे भी अधिक कड़ी चीजसे उनका कोमल शरीर बनाया है—हाथ नहीं लगा सकता! उसपर कटारी नहीं बैठती—लाठी छूट पड़ती है!

३ डाकू—बस! रुक क्यों गये? चिल्लाकर रोने लगो!

सरदार—जी यही चाहता है कि रोऊँ; मगर रोया नहीं जाता। उसके मैंने लात मारी थी, इसीसे वह मर गई। लात खाकर न उसने कुछ कहा और न चिल्लाई—एकटक मेरी ओर ताकती रही, फिर आँखें बंद कर लीं और मर गई।

२ डाकू—जबसे इनकी औरत मरी है तभीसे यह हाल हो गया है। पहले इनमें बड़ा तेज और बड़ी बेदर्दी थी।

१ डाकू—चलो—चलो, शायद शिकार निकला जा रहा है—अब देर मत करो।

(सबका प्रस्थान।)

नेपथ्यमें सुशी०—बचाओ, बचाओ—

[शोरगुलके बाद सुशीलाको पकड़कर डाकुओंका प्रवेश।]

सुशी०—तुम लोग कौन हो?

सरदार—यह जानकर क्या करोगी मैया?

सुशी०—तुम लोग डाकू हो?

सरदार—ठीक समझ लिया।

सुशी०—यह लो, मेरे पास जो कुछ है—ले लो। मुझे छोड़ दो!

(हाथकी पहुँची खोलकर फेंक देती है।)

सरदार—ना, गहने मत उतारो। (पहुँची उठाकर देता है ।) तुम्हारे पास रुपये हों तो दे दो।

सुशी०—यह लो । (नोट देती है ।)

सरदार—(साथियोंसे) तो बस छोड़ दो ।

१ डाकू—यह क्या ! अभी और माल है ।

सुशी०—अब नहीं है ।

२ डाकू—वाह वाह मेरी सोनेकी चिड़िया !—भला देखूँ—

(आँचल पकड़कर खींचता है ।)

सरदार—यह क्या ! छोड़ दो—जाने दो ।

३ डाकू—देख लो, और कुछ है कि नहीं ।

सुशी०—और कुछ भी नहीं है । ईश्वर साक्षी हैं ।

(सरदार मुँह फेर कर खड़ा हो जाता है ।)

सुशी०—मुझे छोड़ दो । बचाओ—

४ डाकू—ले छोड़ता हूँ, (पकड़ता है ।)

सुशी०—बचाओ, बचाओ—(सरदारके पैरोंपर गिरती है ।)

सरदार—(घूमकर) छोड़ दो । नहीं तो यह छुरा—

(छुरा तानता है ।)

डाकू लोग—खबरदार !—

सुशी०—बचाओ, बचाओ—

[विनयकुमारका प्रवेश ।]

विनय—खबरदार !—

सरदार—कौन ? मर्द है ? बस । तो फिर मैं तुम लोगोंकी ओर हूँ—(छुरा तानता है ।)

विनय—खबरदार—(तमंचेका निशाना साधता है ।)

सरदार—ओः ! (विनयके कन्धेमें छुरा मारता है।)

(विनय तमंचा दागता है। सरदार घायल होकर जमीनपर गिर पड़ता है। सब डाकू भाग जाते हैं।)

सरदार—माफ करना भैया ! लड़ा—गिरा। इसका दुःख नहीं है। यह तमंचा अगर मेरे पास होता !—मगर अब इन बातोंसे क्या। मर्दके साथ लड़ा और मरा।—बस—(मर जाता है।)

विनय—ओः ! (बैठकर अपने कंधेका घाव जोरसे पकड़ लेता है।) घर जाओ सुशीला, चलो, मैं पहुँचा आऊँ—(उठनेकी चेष्टा करता है मगर गिर पड़ता है।) घर जाओ।

सुशी०—किस जगह मारा है ? (देखकर) यह है—विनय !—

विनय—घर जाओ !

सुशी०—तुमको यहाँ अकेला छोड़ जाऊँगी ?—विनय, मैं औरत होनेपर भी मनुष्य हूँ। देखूँ—कहाँ लगा है ?

(देखनेके बाद अपना दुपट्टा फाड़कर घावपर बाँधने लगती है।)

विनय—तुम घर लौट जाओ।

सुशी०—तुम्हें छोड़कर मैं नहीं जाऊँगी।

विनय—कहता हूँ—जाओ।—लो वे केदार बाबू आ गये !

[केदारका प्रवेश।]

केदार—यह क्या मामला है ?

विनय—सुशीलाको ले जाइए।

केदार—क्यों ?—यह क्या !—यह कौन है ?—तुम पड़े हुए क्यों हो ?—सुशीला ! तुम यहाँ कहाँ !

विनय—यहाँ एक हत्याकाण्ड हो गया है। सुशीलाको ले जाइए। पुलिस आती ही होगी।

केदार—आने दो, इससे क्या !

विनय—खून हो गया है,—पुलिस सुशीलाको भी इस माम-लेमें घसीटेगी । वह पुलिस—आ रही है—जल्द जाइए ।

केदार—मगर हत्या किसने की है ?

विनय—मैंने !

केदार—तुमने !

विनय—हाँ मैंने ।

सुशी०—नहीं केदार बाबू, मैंने हत्या की है—इस पिस्तौलसे ।

केदार—असंभव है । यह मैं नहीं जानता कि किसने हत्या की है, मगर तुममेंसे किसीने हत्या की हो—यह असंभव है । मैं इस बातको सोचना भी नहीं चाहता । जो असंभव है, उसे सोचनेसे क्या लाभ ?

विनय—नहीं केदार बाबू, सचमुच मैंने ही हत्या की है । डाकूके हाथसे सुशीलाको बचानेमें यह हत्या हो गई है । इसके लिए मुझे फाँसी हो सकती है—

केदार—हो सकती है ? तब तो यह निश्चित है कि हत्या मैंने की है । फाँसीपर जानेका मुझे खूब अभ्यास है । तुमसे नहीं बनेगा । यह हत्या मैंने की है ।

विनय—आप क्या कह रहे हैं केदार बाबू, सुशीलाको ले जाइए ।

सुशी०—मैं नहीं जाऊँगी ।

विनय—नहीं तो पुलिस तुम्हें भी इस मामलेमें घसीटेगी ।

सुशी०—जो चाहे हो ।

केदार—सच है । बेटी सुशीला—आओ तुम्हें घर पहुँचा आऊँ ।—लेकिन याद रक्खो विनय, यह हत्या मैंने की है । आओ, चलो बेटी !—

सुशी०—अपनी रक्षा करनेवालेको छोड़कर मैं एक पग भी नहीं जाऊँगी ।

विनय—नहीं जाओगी ?

सुशी०—जाऊँगी ।

विनय—मैं कहता हूँ—जाओ ।

केदार—आओ बेटी ।

सुशी०—मैं नहीं जाऊँगी ।

केदार—लो सदानन्द बाबू भी आ गये !—

[सदानन्दका प्रवेश ।]

केदार—सुशीला, चलती नहीं हो ?

सदा०—जाओ बेटी, विनयके लिए तुम कुछ खटका न करो । अगर धर्म है तो उसके लिए कुछ खटका नहीं । मैंने दूरसे सब देखा है ।

सुशी०—मैं नहीं जाऊँगी ।

सदा०—तुम यहाँ क्या करोगी बेटी ?

सुशी०—सो मैं खुद नहीं जानती ।

सदा०—बेटी सुशीला, विनय मेरा लड़का है । उसकी रक्षा करनेका जिम्मा मैं लेता हूँ ।

केदार—सुना नहीं ? सदानन्द बाबू हलफके साथ कहते हैं—विनय उनका लड़का है । और मैं हलफके साथ कहता हूँ कि तुम मेरी लड़की हो । नहीं तो, तुम्हारे ऊपर इतना स्नेह मेरे हृदयमें कहाँसे आया बेटी !

सदा०—जाओ केदार, सुशीलाको ले जाओ ।

केदार—आओ बेटी, मैं कहता हूँ ।

(केदारके साथ सुशीलाका प्रस्थान ।)

सदा०—(आगे बढ़कर) चोट क्या भारी लगी है विनय ?

विनय—कुछ वैसी विशेष नहीं है—वह पुलिस आ रही है ।

[पुलिसका प्रवेश ।]

जमादार—कहाँ है लाश ?

सदा०—वह पड़ी है ।

जमा०—किसने खून किया है ?

विनय—मैंने ।

जमा०—पकड़ लो । (सिपाही विनयको गिरफ्तार करते हैं ।)

सदा०—मैं थाने तक इसके साथ चलूँगा । मैं जमानत दूँगा ।

जमा०—आप कौन हैं ?

सदा०—मैं इसका बाप हूँ ।

जमा०—दुःखकी बात है । लेकिन यह खून है !

सदा०—उसके लिए कोई रुकावट न होगी । मैं भारी जमानत दूँगा ।

जमा०—कितनी दे सकेंगे ?

सदा०—एक लाख रुपयेकी । मैं तुम लोगोंके पाससे अभी छुड़ा ले जा सकता था । शायद हजार रुपये भी न देने पड़ते । तुम लिख देते—'पता नहीं लगा ।' लेकिन वह नहीं करूँगा । मेरे पुत्रका न्याय-विचार हो । न्याय-विचारसे अगर लड़केको फाँसी ही होगी, तो मैं खुद इसे फाँसीपर चढ़ाकर अपने हाथसे इसके गलेमें फन्दा लगा दूँगा ।

जमा०—आः ! क्या कह रहे हैं साहब, आप तो इस लड़केके पिता हैं !

सदा०—आश्चर्य हो रहा है—जमादार साहब ! मेरे यही एक बेटा है। लेकिन अगर मेरे सौ बेटे होते, और उनमेंसे हर एकको इसी तरह फाँसी होती, तो मैं उनकी और तरहकी मौत ईश्वरसे न चाहता। ओः, आज मेरी तरह छाती फुला कर कौन चल सकता है ? ऐसा बेटा और किसका है ? बेटा विनय, तूने मेरा मुँह उजला कर दिया। मेरी आँखोंमें आँसू भर आ रहे हैं, दुःखसे नहीं—गर्वसे। मैं धन्य हूँ जो ऐसे पुत्रका गौरव कर सकता हूँ—मैं धन्य हूँ, जो पुत्रको ऐसी शिक्षा दे सका। शाबास बेटा !—चलो जमादार साहब।

(सबका प्रस्थान।)



पाँचवाँ अंक।

पहला दृश्य।

स्थान—देवेन्द्रका घर। समय—प्रातःकाल।

[देवेन्द्र और सदानन्द।]

देवे०—पुरखोंका घर बेच चुका, अब पुरखोंकी गिरिस्ती बेचूँगा। उसके बाद एक कोपीन पहनकर राह राह फिरूँगा। बम् भोलानाथ!

सदा०—यह क्या करते हो देवेन्द्र?

देवे०—कुछ नहीं।—तुम लोग आ गये—आओ।

[खरीददारोंका प्रवेश।]

देवे०—और लोग कहाँ हैं? अच्छा इतने ही काफी हैं। बोलो—पहले यह पलंग लो—क्या बोलते हो?

सदा०—करते क्या हो? यह पुरखोंकी गिरिस्ती है!

देवे०—पिताके ऋणको मैं पुरखोंकी गिरस्तीसे बढ़कर पवित्र समझता हूँ।—बोलो, कौन बोलता है?

१ आदमी—एक रुपया।

२ आद०—दो रुपये।

३ आद०—साढ़े तीन रुपये।

२ आद०—चार रुपये।

देवे०—चार रुपये, चार रुपये, चार रुपये, एक—

१ आदमी—पाँच रुपये।

देवे०—पाँच रुपये। पाँच रुपये एक, पाँच रुपये दो—

सदा०—देवेन्द्र,

देवे०—जाओ—दिक मत करो।—पाँच रुपये एक, पाँच रुपये दो—

सदा०—पचास रुपये—मेरी बोली है। महाशयो, आप लोग बाहर जाइए। चाहे जितनी बोली बोलिए, यहाँसे एक तिनका भी न ले जाने दूँगा।

देवे०—सदानन्द, तुम निकल जाओ।

सदा०—क्यों जाऊँ? तुम नीलाम करो—मैं बोलूँगा।—लो, वे उपेन्द्र बाबू भी आगये।

[उपेन्द्र और अन्य खरीददारोंका प्रवेश।]

सदा०—आप भी बोलिएगा क्या?

उपे०—भैया, तुम पुरखोंकी सब गिरिस्ती बेचे डालते हो?

देवे०—हाँ बेचे डालता हूँ—बोलोगे दादा?

उपे०—हाँ, वह आलमारी—

देवे०—अच्छा बोलो। ना, एक लाटमें यह सब नीलाम करूँगा। यह पलँग, आलमारी, बासन-बर्तन सब—कौन लेता है? बोलो।

उपे०—एक लाटमें?

देवे०—हाँ एक लाटमें।—बम् भोलानाथ।

उपे०—नहीं नहीं, मेरे भाई, सुनो—

देवे०—ना—एक लाटमें—पुरखोंकी सब गिरिस्ती एक साथ जाय। तिल तिल करके क्यों काटना?—एक हाथ—बस एक हाथ!—बोलो।

उपे०—क्या करूँ?—तो यही सही! पुरखोंकी गिरिस्ती बाहर कैसे जाने दूँ? राधे कृष्ण! राधे कृष्ण! बस, एक तुम्हीं सत्य हो।

देवे०—बोलो दादा!

उपे०—बोलूँ, क्या करूँ?—१० रुपये।

१ आद०—१५) रुपये।

२ आद०—२०) रुपये।

उपे०—३०) रुपये।

३ आद०—५०) रुपये।

उपे०—आः—६५) रुपये।

१ आद०—८०) रुपये।

उपे०—९०) रुपये।

१ आद०—१००) रुपये।

२ आद०—१०५) रुपये।

उपे०—११०) रुपये।

सदा०—२००) रुपये।

उपे०—तुम भी बोलोगे सदानन्द?

सदा०—अवश्य—२००) रुपये।

उपे०—२०५) रुपये।

सदा०—४००) रुपये।

उपे०—६००) रुपये।

सदा०—१०००) रुपये।

उपे०—१५००) रुपये।

सदा०—२०००) रुपये।

उपे०—२५००) रुपये।

सदा०—५०००) रुपये।

उपे०—५५००) रुपये।

[लाठी घुमाते घुमाते केदारका प्रवेश।]

केदार—हूँ, हूँ, हूँ, हूँ, हूँ,—१००००) रुपये।

देवे०—केदार !—आओ भाई।

केदार—(लाठी घुमाते घुमाते) बोलो उपेन्द्र बाबू !—यही वह आलमारी है। चाबी कहाँ है ?—हूँ, हूँ, हूँ, हूँ, हूँ, १००००) रुपये।—क्या ?—ए: !—बोलते बोलते रुक क्यों गये ?—यह आलमारी नहीं लेने दूँगा।—१००००) रुपये।

उपे०—यह आलमारी लेकर आप क्या करेंगे केदार बाबू ?

केदार—तुम्हें जेल भेजूँगा। मैं एक दफा हो आया हूँ—अब तुम्हें जाना होगा।

सदा०—मामला क्या है केदार ?

केदार—कहता हूँ !—लो—वे यज्ञेश्वर भी आ गये।

[यज्ञेश्वरका प्रवेश।]

केदार—यही आलमारी तो है ?

यज्ञे०—हाँ यही आलमारी है। चाबी कहाँ है—देवेन्द्र बाबू ?

देवे०—चाबी क्यों माँगते हो ?

केदार—चाबी निकालो। चाबी—हूँ, हूँ, हूँ हूँ, हूँ !—आलमारी—अब देख लूँ।

देवे०—यह लो—(केदारको चाबी देता है।)

केदार—खोलो यज्ञेश्वर बाबू ! (चाबी देता है।)

(यज्ञेश्वर आलमारी खोलता है और केदार चारों ओर हुमकता और आस्फालन करता है।)

यज्ञे०—(भीतरसे वसीयतनामा निकालकर और उसे खोलकर।) लो, यही वह वसीयतनामा है।

देवे०—कौन वसीयतनामा ?

यज्ञे०—आपके पिताका असली वसीयतनामा !

देवे०—तो वह वसीयतनामा ?

यज्ञे०—जाली है।—इन्होंने जाल किया है—मेरे सामने।

केदार—(उपेन्द्रके मुँहके पास मुँह ले जाकर) कहो भाई साहब!

(उपेन्द्र यज्ञेश्वरके हाथसे वसीयतनामा लेने झपटता है। केदार लाठी तानकर बीचमें खड़ा हो जाता है।)

केदार—बस !—

देवे०—दादा !—

उपे०—तुम्हारा यह काम है यज्ञेश्वर ?

यज्ञे०—हाँ, मेरा यह काम है। उपेन्द्र,—आश्चर्य हो रहा है ?—आश्चर्य होनेकी बात ही है। जो सदाका नीच पाजी है—वह एक दिन धार्मिक हो जायगा ? यह नहीं हो सकता। मगर मैंने माताका प्रसाद पाया है; उससे मैं धन्य हो गया हूँ।

केदार—दावात, कलम, कागज लाओ—शीघ्र लाओ, शीघ्र—

सदा०—क्यों ?

केदार०—ठण्डे हो रहे।—देवेन्द्र, तुम्हारे घरमें दावात-कलम नहीं है ?

देवे०---यह लो ।

केदार---हाँ---ठहरो---(दावात, कलम, कागज लेकर) ठहरो, लिख रक्खूँ---क्या जानूँ, क्रोधके मारे फिर कहीं भूल जाऊँ---लिख रक्खूँ---(लिखता हुआ) यह दीर्घ ' ई '---तालव्य ' श ' में ' व ' मिला हुआ---'र' और 'ह' के ऊपर 'ऐ' की मात्रा और अनुस्वार ।---लिख गया---" ईश्वर हैं "; बस, लिख रक्खा, अब डर नहीं है ! यह दीवारपर चिपका भी दिया । (चिपकाकर, घुटने टेककर, हाथ जोड़कर) अगर कभी क्रोधके वेगमें मैंने कहा हो कि ' तुम नहीं हो ' तो क्षमा करना ।

सदा०---विचित्र मनुष्य है !

केदार---मैं नाचूँगा ।

सदा०---नाचोगे ?

केदार---यह भी तो ठीक है, नाचोगे क्या केदार ? केदार भैया, सभ्य बनो---नाचो नहीं ।

सदा०---ना केदार, सभ्य न बनना; बहुत ही विशुद्ध वस्तु तुममें है । पहले इस देशमें इस तरहके सरल, गँवार ब्राह्मण घरघर थे । इस समय अँगरेजी-शिक्षाकी रगड़से वे चूरमूर होकर लुप्तप्राय हो गये हैं । उन्हींमेंके दो-एक टुकड़े इधर-उधर पड़े हैं । यह पुरानी ब्राह्मणोंकी चाल बनाये रक्खो । यह चीज भारतकी खास सामग्री है । पैरोंमें खड़ाऊँ या चप्पलें, मोटी और सादी धोती, शरीरमें बल, मनमें स्फूर्ति, मुखपर सरलताकी झलक,---यह और किसी देशमें नहीं है ।

केदार---तो नाचूँ ?---आलमारी, तू धन्य है । खासी आलमारी है । देखूँ---(देखता है) ओ बाबा ! एक घरके भीतर दूसरा घर है !

देखूँ—यह और क्या है! (नोटोंका बंडल निकालता है) यह क्या है?
—क्यों यज्ञेश्वर?

यज्ञे०—इसे तो मैं नहीं जानता, क्या है।

देवे०—देखूँ (लेकर खोलता है) यह क्या! चोरी नहीं गये!—

(नोटोंका बंडल हाथसे गिर पड़ता है।)

सदा०—यह क्या है देवेन्द्र?

देवे०—गृहिणी! कामिनी!—(सिरपर हाथ रखकर दीवारका सहारा लेता है।)

सदा०—क्या हुआ देवेन्द्र?

देवे०—वे ही ५०००) रु० के नोट हैं। मुझे भीतर ले चलो सदानन्द, आँखोंके आगे अँधेरा छा रहा है।

(सदानन्द देवेन्द्रको भीतर ले जाते हैं।)

उपे०—तुम्हारा यह काम है यज्ञेश्वर?

यज्ञे०—हाँ मेरा ही यह काम है। उपेन्द्र, आश्चर्य मालूम होता है? आश्चर्य होनेकी बात ही है। सदाका पापी मैं—एक दिनमें मेरा उद्धार हो जायगा, यह भी कहीं हो सकता है?—मगर कैसा आश्चर्य है उपेन्द्र! मैयाका प्रसाद पा गया हूँ! वह दिन याद है उपेन्द्र? वही दिन!—जिस दिन मैयाकी दीन, मलीन, धूलि-धूसरित मातृमूर्तिने आकर—एकाएक दमभरमें स्वर्गका द्वार खोल दिया! जान पड़ा, जैसे स्वयं विश्वजननी उतर आई हैं और मेरे सामने घुटने टेककर, हाथ जोड़कर आँखोंमें आँसू भरकर, पीड़ित सतीत्वकी रक्षाके लिए मुझसे भिक्षा माँग रही हैं। मैं सदाका पाजी—तर गया। लेकिन याद रक्खो, तुम्हारे लिए कोई आशा नहीं है।

केदार—बिलकुल नहीं है।

यज्ञे०—मैं केवल पापी हूँ, पर तुम ढोंगी भी हो। तुम अपने पापोंका ढेर ढँकनेके लिए ईश्वरका पवित्र नाम—जो नाम भूखेका आहार, प्यासेका जल, पीड़ाकी दवा, परदेसका मित्र, मरणका साथी है—वही नाम राह राह बेचते फिरते हो। उसके ऊपर, अपनी भतीजीको—बेटीको—उस दिन तुमने बेटी कहकर उसे पुकारा भी था—अपनी बेटीको मेरे व्यभिचारकी आगके मुँहमें ढकेल चुके थे।

केदार—कौन ? किसे ?

यज्ञे०—नीच स्वार्थके लिए, तुच्छ पाँच हजार रुपयोंके लिए अपनी भतीजीको—जिसने विश्वास करके—बापके भाईका विश्वास न करेगी तो किसका करेगी ?—तुम्हारे घरमें आश्रय लिया था, उसे तुम मेरे कामपाशके फंदेमें छोड़कर चले आए थे।

केदार—(उपेन्द्रकी गर्दन पकड़कर) क्योंरे पाजी !—बस, अब तेरा छुटकारा नहीं है। सिर्फ वसीयतनामा जाली बनाया होता तो तू छोड़ भी दिया जाता। लेकिन तुझ ऐसा बदमाश अगर बिना सजाके छूट जायगा तो संसार एक दिनमें उलट जायगा। मैं यज्ञेश्वरको मार कर जेल हो आया हूँ, अब तेरी बारी है—चल।

(प्रस्थान।)

दूसरा दृश्य।



स्थान—देवेन्द्रका अन्तःपुर। **समय**—संध्याकाल।

[विनय और सुशीला।]

विनय—तुमने तो कहा था, ब्याह ही नहीं करूँगी !

सुशी०—वह मेरी भूल थी। सोचा था—यह स्वर्ग है। लेकिन देखा, स्वर्ग नहीं है।—नहीं जानती थी कि यहाँ दयामयने नारी-जातिको पुरुष-जातिका शिकार बनाकर पैदा किया है।

विनय—कैसे ?

सुशी०—इस संसाररूपी जंगलमें स्त्री-जाति मुग्ध हरिणीकी तरह विचरती है।—हायरी नारी! दासत्व करनेके लिए ही तेरा जन्म है—पहले पिताका, फिर पतिका, फिर पुत्रका।—कुछ शक्ति नहीं है।

विनय—कुछ शक्ति नहीं है ? पुरुषकी अन्ध शक्तिको नारी ही राहपर चलाती है। नारीके अपमानसे कौरवोंका सर्वनाश हुआ; नारीके अभिशापसे लंकाका ध्वंस हुआ; नारीके कटाक्षसे दैत्योंका पराजय हुआ।

सुशी०—पुरुषोंकी कृपा! सबसे बढ़कर दुःख यही है कि इन पुरुषोंकी कृपापर भरोसा रखकर नारी-जातिको जीवन धारण करना पड़ता है।

विनय—मगर इसमें पुरुषका क्या अपराध है ?

सुशी०—ना, उसका अपराध क्या है ? ईश्वरने नारीको पुरुषका आहार बनाया है, पुरुष क्या करे ? वह अपनी शक्तिभर ईश्वरके इस अविचारका प्रतिकार करता है। पुरुष नारीका आदर करता है, गृहलक्ष्मी बनाकर रखता है—यह पुरुषकी असीम कृपा है।

विनय—कृपा है ?

सुशी०—और नहीं तो क्या है!—ये जो बाल्यविवाह, पर्देकी चाल इत्यादि बातें हैं—जिन्हें अबतक मैं स्त्रीजातिके ऊपर पुरुषके अत्याचार मानती थी—उन्हें, देखती हूँ, पुरुषजातिने खूनी लंपट पुरुषोंसे बचानेके लिए ही चलाया है। अब देख पड़ता है कि ये सब बातें एकदम

कुसंस्कार नहीं हैं। पुरुष जबतक नीच, लंपट, व्यभिचारी है—समाज जबतक अध:पतित बना हुआ है—तबतक स्त्रीकी रक्षाके लिए इन सब बातोंकी बड़ी जरूरत है। कारण, नारी अबला—शक्तिहीन है।

विनय—पुरुष अगर इतने ही अधम हैं, तो फिर ब्याह क्यों किया?

सुशी०—यह क्या ब्याह है?—यह एक पुरुषके घरमें एक स्त्रीका आश्रय लेना है। वह उसी पुरुषकी आज्ञा सुनेगी, उसीका दासीपना करेगी; बदलेमें पुरुष उसे खाने-पीने-पहरनेको देगा।—यह ब्याह है?—या निन्दित दासीपना है?

विनय—तो फिर यथार्थ ब्याह किसे कहते हैं?

सुशी०—पुरुष और नारी यदि समकक्ष होते, अगर ब्याह पुरुषका विलास और नारीका प्रयोजन न होता, अगर काम उस राज्यका राजा न होता—प्रेम राजा होता, अगर—

विनय—सो कैसे?

सुशी०—मैं चाहती हूँ—विशुद्ध प्यार—निष्काम, निःस्वार्थ, निर्मुक्त प्रेम। उस प्रेममें उतावलापन नहीं है, डाह नहीं है, संदेह नहीं है, उच्छ्वास नहीं है, विरह नहीं है। वह आकाशकी तरह स्वच्छ और मृत्युकी तरह स्थिर है। तुम रहते मंगल ग्रहमें, मैं रहती बृहस्पति ग्रहमें, और दोनोंके बीचमें सदा एक अश्रान्त अविराम झंकार रहती।

[विनोदिनीका प्रवेश।]

विनो०—अब हमारी इस कठिन पृथ्वीकी बस्तीमें उतर आओ। जो होनेका नहीं, वह सोचना बेकार है। संसारमें सुख और दुःख दोनों हैं, इसी कारण वह इतना मधुर है। प्रकाश-अंधकार, घाम-वर्षा, सुख-दुःख, आदिसे युक्त होनेके कारण ही इस पृथ्वीको मैं

इतना प्यार करती हूँ । इस पृथ्वीको छोड़कर मैं स्वर्गको भी नहीं जाना चाहती ।—अब आओ—चलकर भोजन करो ।

(सबका प्रस्थान ।)

[घबराये हुए केदारका प्रवेश ।]

केदार—कहाँ गई बेटी !—यहाँ भी तो कोई नहीं है ! मैं गीत सुनानेके लिए सदानन्दकी मण्डलीको भी बुला लाया । ना—यह न होगा । वह गीत अवश्य सुनाऊँगा । कैसा बढ़िया गीत तैयार किया है सदानन्दने !—" चिर जीवो तुम "—क्या, उसके बाद ?—हाँ " चिरजीवो तुम भारत-रमणी "—उसके बाद एक " प्रवरा " है ।—दुत तेरी दुममें धागा !—स्मरणशक्ति बिलकुल ही नहीं है । बुद्धि भी कुछ वैसी अधिक नहीं जान पड़ती ।

[सदानन्दका प्रवेश ।]

सदा०—उसकी जरूरत भी नहीं है ।—अपने महत् हृदयके गुणसे तुमने सारी पृथ्वी जीत ली है केदार ! पुराणोंमें अनेक चरित्र देखे और पढ़े हैं, इतिहासके पन्ने भी बहुत उलटे हैं, लेकिन ऐसा सरल, उदार, भोला, त्यागी, अस्थिर, सदा आनन्दमय चरित्र और नहीं देखा ।

[देवेन्द्रका प्रवेश ।]

देवे०—कहाँ है, सदानंद,—तुम्हारी मंडली कहाँ है ?

सदा०—सब नीचे हैं ।

देवे०—तो उन्हें बुलाओ। मैं वह गीत आज लड़कियोंको सुनवाऊँगा।

[सदानन्दका प्रस्थान और कुछ बालकोंके साथ फिर प्रवेश ।]

सब गाते हैं ।

गीत ।

चिर जीवो तुम भारत-रमणी रमणी-कुल-प्रवरा ।
सुस्मितवदना सुधामयी त्यों कोकिलकी सी मृदुस्वरा ॥

दिव्यसुगठना, लज्जाभरणा, विनत-भुवन-विजयी-नयना।
मलयधीरगमना धीरा त्यों स्नेहप्रीति-मुखरा ॥ चि० ॥ १ ॥
शिशिरस्निग्धवचना, अनुकूला, किशलयपेलव वामा—
अपराजिता, नम्रतापूर्णा, नीलजलदसम श्यामा—
मुक्तादशना, श्यामलकेशी, रक्तकमलदल-अधरा ॥चि०॥२॥
पतिप्रिया, पतिभक्ता, पतिकी सखी हँसीमें प्यारी—
दुखमें दीना, दासी, प्रणयिनि, सकल जगतसे न्यारी—
निठुर वचन सुन चुपकी रहती, सर्वसहा ज्यों धरा ॥चि०॥
*गृहलक्ष्मी, देवी, स्वदेशकी गरिमा पुण्यवती—
सावित्री-सीता-अनुगामिनि, सती, सुभाग्यवती—
मर्मर-दृढ-चरिता, कोमल-मन जलसम, नहिं अपरा ॥चि०॥
हा, यह रत्न दासके हियमहँ ! पंक-पतित शशि-हाँसी—
परुप-भीरु-रमणी तस्कर-तिय स्वार्थदास-दासी—
क्यहि बाँधी पशुसाथ, हाय, ये स्वर्गअप्सरा प्रवरा ॥ चि०॥

तीसरा दृश्य।



स्थान—जेलखाना। **समय**—तीसरा पहर, शामके करीब।

[उपेन्द्र अकेला।]

उपे०—मैं तो सब कुछ छोड़ कर आया हूँ, फिर भी वह मेरे पीछे पीछे क्यों फिरती है ? मैं जेलमें आया हूँ—तब भी नहीं छोड़ती ! मैं कोल्हूका बैल हूँ—और वह जैसे चाबुक मारकर मुझे घुमा रही है! मेरे हृदय-सागरके ऊपर जब आँधी चलती है, तब उसका विराट् उच्छ्वास हृदयमें उठता है —हृदयमें छिटक जाता है ! और कोई नहीं है, जो उसे छातीपर ले लेवे। मेरे हृदयके भीतर मेरा आत्मा ही जैसे काँप उठता है। मनकी पीड़ा मनके भीतर ही उठकर, मँड़राकर, फिर बैठ सी जाती है। रह-रहकर

यही हाल होता है । कितने दिनमें प्रायश्चित्त पूरा होगा भगवान् !—
कितने दिनमें—कितने दिनमें ?

[जेलरका प्रवेश ।]

जेलर—दो सालमें ।

उपे०—हाः, हाः, हाः—जेलर साहब मेरा पाप अगर तुम जानते होते !—दो साल क्या, दो सौ साल भोगनेसे भी वह मिट नहीं सकता । जानते हो, मैंने क्या किया है ?

जेलर—जानता क्यों नहीं ?—जाल किया है ।

उपे०—हाः, हाः, हाः ! शायद इतना ही जानते हो जेलर साहब ! हाः, हाः, हाः,—सीधी सादी बालिकाको डुबाई है, सीधे सादे भाईको ठगा है, रक्त-मांसके संबंधको उलट दिया है,—उसे खानेको न देकर मार डाला है । वह संनिपातमें नहीं मरी जेलर साहब !—सन्निपातमें नहीं मरी; अन्नजलके विना तड़प तड़प कर मरी है ।

जेलर—कौन ?

उपे०—मेरी स्त्री । वह वसीयतनामेका हाल जानती थी—उसे विष देकर मार डाला है । जानते हो जेलर साहब, रातको मैं क्या देखता हूँ ?

जेलर—क्या देखते हो ?

उपे०—देखता हूँ, वे सब मेरे सिरहाने सिरपर खड़े होकर झुककर मेरी ओर ताक रहे हैं—एकटक ताक रहे हैं । उसपर सबसे बढ़कर पाप यह है कि मैंने अपने पापोंका ढेर ईश्वरके पवित्र-नामसे ढँका है । ‘ बगलाभगत ’ बनकर रहा हूँ । ओः ! मेरी क्या गति होगी जेलरसाहब ?

(जेलर अत्यन्त अनादर और घृणाकी दृष्टिसे देखकर चला जाता है ।)

विद्वेग सब, नेत्र-गंगाके जलमें बहा दो।—उपेन्द्र ! भाई ! तुम्हारा यह मलिन मुख देखकर जी चाहता है—तुम्हारे लिए मैं जेल काटूँ—तुम बाहर चले जाओ। क्या यह नहीं हो सकता ?

सदा०—केदार, पुराणोंमें महर्षियोंकी बातें पढ़ी हैं। वे क्या तुमसे भी बड़े थे ?

उपे०—केदार, अब मुझे क्या दुःख है ! तुम सबने मुझे क्षमा कर दिया है। अब मैं हँसते हुए जेल काटूँगा।—देवेन्द्र—भाई ! मेरी सब जायदाद तुम्हारी है—उससे भी बढ़ कर मेरा हृदय, तुम्हारा है। जाओ, घर जाओ। आशीर्वाद करता हूँ—सदा सुखी रहो।

देवे०—(सूखी हँसी हँसकर) सुखी ? मैं ?—ईश्वर इतना अविचार करेंगे ?

सदा०—जानता हूँ भाई, इस बारेमें भी तुम्हारे अनेक कसूर हैं। लेकिन सब सुखोंके साथ दुःख मिला हुआ है। सर्वथा त्रुटिहीन विशुद्ध उज्ज्वल सुख नाटकके रंगमंचके बाहर नहीं देख पड़ता। संसार रंगमंच नहीं है देवेन्द्र।

देवे०—सदानन्द,—केदार, तुम दोनोंका ऋण मैं इस जन्ममें नहीं चुका सकता। इस जीवनमें मैं तुम्हारे उपकार नहीं भूलूँगा। लेकिन मेरा जीवन भी अब अधिक दिन नहीं रहेगा। अब मैं जीना चाहता भी नहीं हूँ। मैं अपनी गृहिणीसे क्षमा माँगनेके लिए व्यग्र होकर उसी ओर दृष्टि लगाये हूँ। जीवनमें वह केवल दुःख-दारिद्र्य देखती रही—और मैं सम्पत्तिका सुख भोगूँगा ?—यह कहीं हो सकता है ?

केदार—क्यों ? बहूजी भी तुम्हारे साथ सम्पत्तिका सुख भोगेंगी।

देवेन्द्र—बहूजी ? वह क्या अब इस पापपूर्ण पृथ्वीपर है ? मैंने ही उसे मार डाला है ।

केदार—वे इसी पृथ्वीपर हैं—और मेरे ही घर हैं ।

देवे०—यह क्या ! सच—सच कहते हो केदार ?—

केदार—मैंने क्या कुछ झूठ कहा है? यह क्या दिल्लगीकी बात है ? वे आत्महत्या करनेको तैयार जरूर थीं, लेकिन मैं उन्हें समझा-बुझाकर उनके बापके घर पहुँचा आया था । उसके बाद वहाँसे आकर इस समय वे मेरे घर हैं ।

देवे०—केदार ! केदार !—तुम मेरे कौन हो ?

केदार—मैं तुम्हारा भाई हूँ ।

उपे०—भाई ! नहीं, भाई क्या इतना बड़ा हो सकता है ?

केदार—भाईका पद इससे भी बड़ा है। मगर तुम भाईके गौरवकी रक्षा नहीं कर सके—यह बात जरूर है ।

[जेलरका प्रवेश ।]

जेलर—महाशयो, समय हो गया; बाहर चलिए ।

देवे०—दादा, अपने पैरोंकी धूल दो । (प्रणाम करता है ।)

उपे०—सुखी रहो ।

(उपेन्द्रके सिवा सबका प्रस्थान ।)

पर्दा गिरता है ।

समाप्त ।

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-सीरीज ।

हिन्दीमें यह ग्रन्थमाला सबसे पहली, सबसे श्रेष्ठ और हिन्दी साहित्यकी सच्ची उन्नति करनेवाली है । इसमें अब तक विविध विषयोंके—नाटक, उपन्यास, काव्य, इतिहास, समालोचना, विज्ञान, जीवनचरित्र, सदाचार-नीति, अध्यात्म, आदिके—५० ग्रन्थ निकल चुके हैं जिनकी सर्वत्र प्रशंसा हुई है और एक एक ग्रन्थके कई कई संस्करण हो चुके हैं । ग्रन्थमालाके स्थायी ग्राहकोंको सब ग्रन्थ—पहले प्रकाशित हुए और आगे प्रकाशित होनेवाले—पौनी कीमतमें भेजे जाते हैं । स्थायी ग्राहक होनेकी फीस केवल आठ आने है । अभी तक प्रकाशित हुए तमाम ग्रन्थोंका सूचीपत्र एक कार्ड लिखकर मँगा लीजिए । नीचे कुछ चुने हुए ग्रन्थोंका परिचय दिया जाता है—

उच्च श्रेणीके सुन्दर उपन्यास ।

१ प्रतिभा । अतिशय सुरुचिसम्पन्न, भावपूर्ण, मनोरंजक और शिक्षाप्रद उपन्यास । बालक युवा स्त्री और पुरुष सबके हाथमें देने योग्य । स्त्रियोंके लिए खास तौरसे उपयोगी और मनोरंजक । चतुर्थ संस्करण । मूल्य १।)

२ अन्नपूर्णाका मन्दिर । यह बहुत ही पवित्र, पुण्यमय और करुणरसपूर्ण ग्रन्थ है । थोड़े ही समयमें इसके मराठी अँगरेजी आदि कई भाषाओंमें अनुवाद हो चुके हैं । हिन्दीके सुप्रसिद्ध कवि बाबू मैथिलीशरण गुप्तने इसे बहुत ही पसंद किया है और उन्हींकी प्रेरणासे यह छपाया गया है । वे लिखते हैं—" अन्नपूर्णाका मन्दिर मैंने कई बार पढ़ा होगा, पर किसी बार ऐसा नहीं हुआ कि आँसुओंसे दृष्टिरोध न हुआ हो । यह अनुपम उपन्यास है । " इसमें सती और सावित्रीके चरित्र पौराणिक चरित्रोंसे भी ऊँचे बढ़ गये हैं । स्त्रियोंके चित्तपर इस उपन्यासका लोकोत्तर प्रभाव पड़ता है । प्रत्येक स्त्री और बालिकाको इसे पढ़ा देना चाहिए । चतुर्थ संस्करण । मूल्य १)

३ छत्रसाल । बुन्देलखण्डकी स्वाधीनताकी रक्षा करनेवाले वीरकेसरी छत्रसाल और चम्पतरायके चरित्रको लेकर इस अपूर्व उपन्यासकी रचना की गई है । एक नामी समालोचकने इसे प्रसिद्ध अँगरेजी लेखक स्कॉटके उपन्यासोंकी जोड़का बतलाया है । देशभक्ति, आत्मोत्सर्ग, प्रतिज्ञापालन, आदि भावोंसे

लबालब भरा हुआ है। कथानक इतना कुतूहलवर्धक है कि पढ़ना शुरू करते ही फिर छोड़नेको जी नहीं चाहता। द्वितीय संस्करण। मू० १॥।)

४ आँखकी किरकिरी। महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुरके सर्वश्रेष्ठ उपन्यासका अनुवाद। यह उपन्यास बहुत ही मनोरंजक और सुशिक्षादायक है। हिन्दीमें इसकी जोड़का एक भी उपन्यास नहीं। इसमें मनुष्यके स्वाभाविक भावोंके चित्र खींचकर उनके द्वारा मित्रकी तरह—आत्माकी तरह-शिक्षा दी गई है। बहुत ही सरस और दिलचस्प है। मू० १॥), राजसंस्करणका २॥)

५ चन्द्रनाथ। बंगालके इस समयके सर्वश्रेष्ठ लेखक शरच्चन्द्र चट्टोपाध्यायके एक सुन्दर सामाजिक उपन्यासका अनुवाद। बहुत ही मार्मिक और हृदयद्रावक। समाप्त किये बिना नहीं छोड़ा जाता। मू० ॥।)

६ सुखदास। हिन्दीके सर्वश्रेष्ठ उपन्यासलेखक श्रीयुत प्रेमचन्दजीने इसे जार्ज इलियटके ' साइलस माइनर', नामक मशहूर उपन्यासकी छाया लेकर लिखा है। मूल और छायालेखक दोनों ही अतिशय सुप्रसिद्ध हैं। मू० ॥=)

७ विधाताका विधान। ' अन्नपूर्णाका मंदिर ' की लेखिका श्रीमती निरूपमादेवीके ' विधि-लिपि ' नामक अतिशय पवित्र और भावपूर्ण उपन्यासका अनुवाद। स्त्री होनेके कारण निरुपमादेवी अपने स्त्रीपात्रोंका चरित्र जिस स्वाभाविकता और मार्मिकतासे अंकित करती हैं, बड़ेसे बड़े लेखक इस विषयमें उनकी बराबरी नहीं कर सकते हैं। उनके स्त्रीपात्रोंकी पवित्रता भी बेजोड़ होती है। भूमिकामें लेखिकाका जीवनचरित और इस रचनाकी विस्तृत आलोचना की गई है। पृष्ठसंख्या ४२०। मूल्य २॥), सजिल्दका ३)

८ घृणामयी। हिन्दीके उदीयमान लेखक और सुकवि पं० इलाचन्द्र जोशीका लिखा हुआ मौलिक उपन्यास, हिन्दीमें बिल्कुल नये ढंगकी चीज है। एकबार पढ़ना शुरू करके फिर इसको समाप्त किये बिना छोड़ना कठिन है। मूल्य लगभग १।)

९ चिर-कुमार-सभा। कविसम्राट् रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी लिखी हुई इस पुस्तकको पढ़कर पाठक जान सकेंगे कि रवि बाबू अन्य विषयोंके समान सभ्य समाजोपयोगी हँसी-विनोदकी रचना करनेमें भी कितने चतुर हैं। इस सवा दो सौ पृष्ठोंकी पुस्तककी प्रत्येक पंक्ति रसिकों और सहृदय पाठकोंके चित्तको चंचल कर देनेवाली है। वाक्यवाक्यमें कवित्व, भावुकता और व्यंग भरा हुआ है।

इसमें आजन्म ब्रह्मचारी बने रहनेकी डींग हाँकनेवाले कालेजके विद्यार्थियोंकी फिसलनका बड़ा मजेदार चित्र है। हिन्दीके उदीयमान लेखक श्री इलाचन्द्र जोशीने इसकी मार्मिक भूमिका लिखी है। मूल्य ॥), राजसंस्करण बढ़िया एण्टिक कागजपर २)

१० मानव-हृदयकी कमजोरियाँ। फ्रान्सके जगत्प्रसिद्ध लेखक मोपासाँकी चुनी हुई कहानियोंका अपूर्व संग्रह। युरोपमें मोपासाँसे बढ़कर कहानी-लेखक अबतक कोई नहीं हुआ। इस संग्रहकी प्रत्येक कहानी अनुपम है। मूल्य लगभग एक रुपया।

११ वीरोंकी कहानियाँ। लेखक श्री कुँवर कन्हैयाजू। इसमें १ बादशाहकी दुलहिन, २ तिलकमंजूषा, ३ रक्षाबन्धन, ४ हिम्मतसिंह, ५ पद्मिनी और ७ कमलावती ये छह ऐतिहासिक कहानियाँ हैं, जो राजपूत पुरुष और स्त्रियोंकी वीरताके चित्र नेत्रोंके सामने खड़ा कर देती हैं। मूल्य ।≡)

नीचे लिखी कहानियोंके संग्रह (गल्प-गुच्छ) और कहानियाँ भी पढ़ने योग्य हैं—

फूलोंका गुच्छा—प्रथम भाग। चौथा संस्करण। मू० १)

फूलोंका गुच्छा—द्वितीय भाग (कनक-रेखा)। द्वितीय संस्करण। मू० १)

रवीन्द्र-कथा-कुंज—(रविबाबूकी श्रेष्ठ कहानियाँ) मू० १)

नवनिधि—लेखक-श्री प्रेमचन्दजी। मू० ॥)

पुष्पलता—ले०—श्री सुदर्शनजी। सचित्र। मू० १)

चित्रावली—बढ़िया कहानियाँ। मूल्य ॥≈)

श्रमण नारद—एक बौद्ध महात्माकी कहानी। मूल्य दो आने।

भाग्य चक्र। ≠)॥ **दियातले अँधेरा**। ≡)

नोट—हमारे यहाँ बनारस इलाहाबाद, लखनऊ, कलकत्ता आदि सब जगहके प्रकाशित हुए ग्रन्थोंका भी बिक्रीके लिए संग्रह रहता है। आपको किसी भी ग्रन्थकी जरूरत हो, हमको पत्र लिखकर मँगा लीजिए। हमारा पता—

संचालक—**हिन्दीग्रन्थरत्नाकर-कार्यालय,**

हीराबाग, पो. गिरगाँव, **बम्बई.**